डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/2018-20
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 27, पृष्ठ सं. 100
प्रकाशन दिनांक : 20 से 25 प्रतिमाह

आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167
मूल्य 25/-



अगस्त 2020

अक्षरा

185

साहित्य की मासिकी

श्री अगिन शेखर
90–बी, गलीन 12,
भवानी नगर, जानीपुर,
जम्मू–180007

म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रकाशन

क्र.	पुस्तक का नाम	सम्पादक/लेखक	मूल्य
1.	परिचय ग्रंथ	श्री बैजनाथ प्रसाद दुबे (सं.)	40
2.	कौन किसका आदमी	श्री कैलाशचन्द्र पन्त	75
3.	धुंध के आर-पार	श्री कैलाशचन्द्र पन्त	100
4.	शब्द का विचार पक्ष	श्री कैलाशचन्द्र पन्त	200
5.	मालवांचल में कूर्मांचल डॉ. शिव चौरसिया (सं.)	डॉ. श्यामसुन्दर निगम	600
6.	संवाद और हस्तक्षेप (खण्ड 1 से 10 एवं 12)	श्री विजय कुमार देव (सं.)	
	संवाद और हस्तक्षेप (खण्ड 11 एवं 13,14,15,16,17,18,19, 20, 21, 22, 23 एवं 24) (संवाद और हस्तक्षेप पावस व्याख्यानमाला के अंतर्गत विद्वानों के द्वारा दिये गये विचारों का अनूठा संकलन)	डॉ. सुनीता खत्री (सं.)	250 (प्रति खण्ड)
7.	सृजन यात्रा : (1) गोविन्द मिश्र	डॉ. उर्मिला शिरीष (सं.)	75
8.	सृजन यात्रा : (2) नरेश मेहता	श्री प्रमोद त्रिवेदी (सं.)	75
9.	सृजन यात्रा : (3)शैलेश मटियानी	श्री कैलाशचन्द्र पंत (सं.)	100
10.	सृजन यात्रा : (4) डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन	डॉ. आशा शुक्ला (सं.)	125
11.	सृजन यात्रा : (5) रमेशचन्द्र शाह	प्रो. रमेश दवे, विजय कुमार देव (सं.)	145
12.	सृजन यात्रा : (6) डॉ. रामकमल रॉय	डॉ. सुनीता खत्री (सं.)	150
13.	मंथन-1 बढ़ती हुई हिंसक : प्रवृत्तियाँ बुनियादी पड़ताल	डॉ. आशा शुक्ला (सं.)	25
14.	मंथन-2 ... ताकि संवाद जारी रहे	डॉ. आशा शुक्ला (सं.)	70
15.	मंथन-3 राजनीति, अपराध और समाज	डॉ. आशा शुक्ला (सं.)	100
16.	मंथन-4 चिंतन की विविध दिशाएँ	श्रीमती रक्षा सिसोदिया (सं.)	300
17.	मंथन-5 ज्ञान विषयों पर हिन्दी लेखन (मंथन 1 से 5 में बसंत एवं शरद व्याख्यानमाला के अंतर्गत दिये गये विद्वानों के विचारों का संकलन)	श्रीमती रक्षा सिसोदिया (सं.)	300 (प्रति खण्ड)
18.	मालवी की उपबोलियाँ और उनका सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य	डॉ. श्यामसुन्दर निगम (सं.)	100
19.	बुन्देली के विविध आयाम	श्री युगेश शर्मा (सं.)	150
20.	चिन्ता और चिन्तन	श्री युगेश शर्मा (सं.)	200

नोट : उक्त प्रकाशनों के क्रय पर समिति द्वारा 25 प्रतिशत की विशेष छूट दी जाएगी।
मासिक पत्रिका 'अक्षरा' : एक अंक का मूल्य 25 रुपये वार्षिक मूल्य 300 रुपये।

अक्षरा

185

कैलाशचन्द्र पन्त
प्रधान सम्पादक

सुशील कुमार केडिया
प्रबंध सम्पादक

डॉ. सुनीता खत्री
सम्पादक

श्रीमती-जया केतकी
सम्पादन सहयोग

सुधा बाथम
अक्षर-संयोजन

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रुपए
दस वर्षीय सदस्यता शुल्क : 2500 रुपए
एक प्रति 25 रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 5 डॉलर, वार्षिक : 60 डॉलर

चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा' के नाम देय
ऑनलाइन पेमेंट के लिये- इलाहाबाद बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल
Ac/ No. 50413818696, IFSC- ALLA 0212241

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, 2661087, ई-मेल - myakshara18@gmail.com
hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - www.akshara.page, www.madhyapradeshrashtrabhasha.com

---

सम्पादकीय

संगठित राष्ट्र-बोध ही संकटों पर विजय पाता है

भारत के समक्ष जिस तरह एक के बाद एक संकट उपस्थित हो रहे हैं, उनको देख कर लगता है कि परमात्मा देश की कठिन परीक्षा ले रहा है। दूसरे ही क्षण विचार आता है कि ऐसी ही कठिन परीक्षाओं से गुजरते हुए कोई भी राष्ट्र मजबूत बनता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज भारत एक सशक्त और स्वाभिमानी राष्ट्र के रूप में विश्व में सम्मान पाने लगा है। लेकिन एक विरोधाभासी तत्व भी दिखाई देता है। दुर्भाग्य से वह तत्व देश के भीतर ही मौजूद है। वह तत्व इस प्रयास में लगा रहता है कि भारत एक खंडित राष्ट्र के रूप में दिखाई दे। इसलिये इस तत्व को न केवल पहिचानने की आवश्यकता है बल्कि इनके प्रयासों को निष्फल करना देश की प्राथमिक आवश्यकता बन गया है।

हम लोग महाभारत के उस वृत्तान्त से परिचित हैं जब बाहरी शत्रुओं के आक्रमण के सामने पाण्डव और कौरवों ने पारस्परिक मतभेद भुलाकर घोषणा की थी- 'वयं पंचाधिकम शतम'। हम सौ कौरव और पाँच पाण्डव नहीं हैं, आक्रमणकारी का सामना करने के लिये हम एक सौ पाँच हैं। भारत राष्ट्र उसी सिद्धान्त की बुनियाद पर हजारों वर्षों से अपना अस्तित्व बनाए हुए है। इसी कारण हमने विभिन्नता में एकता के सूत्र में स्वयं को पिरोया है। लेकिन ऐसे क्षण भी उपस्थित हुए जब भीतर से घात करने वाले तत्वों ने राष्ट्र की एकता को खंडित भी किया। इतिहास का अध्ययन करते हुए ज्ञात होता है कि जो तत्व आज विघटनवादी तेवर दिखा रहे हैं, वैसे तत्व पहले भी मौजूद रहे हैं। इतिहास स्वयं को दोहराता दिखाई दे तो आवश्यक भी हो जाता है कि उनका निर्मूलन करने हेतु ऋषि-प्रज्ञा से संपन्न आचार्य, बुद्धिजीवी और सामाजिक सरोकारों से जुड़ी संस्थाएँ प्रतिरोध करें और खुलकर करें। इतिहास में भारत तभी पराजित हुआ है जब विदेशी शक्तियों ने विभाजनकारी तत्वों को बरगलाने या ललचाने में सफलता प्राप्त की। जब भी हमारे राष्ट्र बोध में-'वयं पंचाधिकम शतम', जिसका सिद्धान्त था-विचलन पैदा हुआ, देश हार गया। उस कारण ही एक हजार वर्षों की दासता की असह्य पीड़ा हमें भोगनी पड़ी।

देश की आवश्यकता को मध्ययुग में शिवाजी ने समझा था। माँ भवानी के समक्ष उन्होंने देश को मुगल दासता से मुक्त कराने का संकल्प लिया था। उन छोटे-छोटे जागीरदारों को संगठित किया था जो आदिल शाह की चाकरी में रहते भोग-विलास में लिप्त थे। उनके आदर्श सन्त तुकड़ो जी महाराज और समर्थ गुरु रामदास थे। उनसे प्राप्त मानवीय दृष्टि को आत्मसात करते हुए शिवाजी ने

धर्मराज्य स्थापित करने का लक्ष्य रखा था। इस रास्ते में जो सहयोगी बना, उसे गले लगाया, पूरा सम्मान दिया। जो दासता की जागीर में सुख-चैन भोगने में व्यस्त थे, सल्तनत की मुखबिरी करते थे, उनको दंडित करने में भी शिवाजी ने कोई संकोच नहीं दिखाया। मावलखण्ड इलाके को सर्वप्रथम अपने आधीन कर सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ की और मावलियों के शौर्य का उपयोग राष्ट्र-कार्य में किया। जिस तरह राणा सांगा और महाराणा प्रताप ने मेवाड़ से अकबर की सल्तनत को चुनौती दी, उससे राष्ट्रव्यापी चेतना प्रज्वलित हुई। पंजाब में गुरु गोविन्दसिंह, बुन्देलखंड में महाराज छत्रसाल और रानी दुर्गावती तथा दक्षिण में शिवाजी ने औरंगजेब की बादशाहत को दिल्ली के इर्द-गिर्द समेट दिया था। शिवाजी की विशेषता यह थी कि उन्होंने कूटनीति, रणनीति दोनों का उपयोग किया। मराठा साम्राज्य का विस्तार शिवाजी के कौशल का स्वयं साक्षी है। शिवाजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने युद्ध में तोप और बारूद का महत्त्व समझा था और समुद्र की उपयोगिता को समझते हुए उस दिशा में भी सर्वप्रथम कदम उठाये थे। शिवाजी के धर्मराज्य की बात पढ़कर धर्मनिरपेक्षतावादियों की नाक-भौं सिकुड़ जाएगी। परन्तु यदि वे शिवाजी के जीवन का अध्ययन करेंगे तो उन्हें धर्म और धर्म से संचालित राज्य को समझने में कठिनाई नहीं होगी। वह रामराज्य का मध्ययुगीन संस्करण था तथा पूरी तरह उस धर्म को व्याख्यायित कर देता है जिसे हम सनातनधर्म कहते हैं। सनातन धर्म के अनुयायी ही कह सकते हैं कि हमारा धर्म न मजहब है, न रिलीजन। वह मनुष्य जीवन का आचरण शास्त्र है।

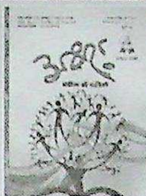
अंग्रेजी शासन ने बहुत चतुराई से उन समस्त संस्थाओं को छिन्न-भिन्न किया जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी संस्कारों का सन्निवेश करती थीं। सबसे पहला प्रहार ब्राह्मण संस्था पर किया गया। वे मानते थे कि ब्राह्मण संस्था ही इस देश की संस्कृति की रीढ़ की हड्डी है। अंग्रेजों ने परम्परागत शिक्षण संस्थाओं को ध्वस्त किया। भारत के इतिहास को, जो अनादिकाल से वेद और पुराणों में संरक्षित था, मिथक बताया, कपोल कल्पना कहा। सोचने की बात है कि वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत और गीता को जितना भी हम आज समझ पाते हैं, वह उन्हीं ब्राह्मणों की देन है जो अभाव में जीते थे पर संस्कृत ग्रंथों को आम-जन तक पहुँचाते रहे। लेकिन ब्रिटिशों द्वारा थोपी गई शिक्षा पद्धति का ही परिणाम है कि ब्राह्मणों को कहीं मनुवादी, कहीं उत्पीड़क और कहीं जातिवादी होने का लांछन झेलना पड़ता है। आश्चर्य तो यह है कि पाश्चात्य शिक्षा में शिक्षित और दीक्षित ब्राह्मण वर्ग भी आज दुर्दम्य अपराधियों को ब्राह्मण का कवच पहना रहा है। इस सांस्कृतिक स्खलन की संभावना लार्ड मैकॉले बहुत पहले देख चुका था। तभी तो उसने भारत की रीढ़ की हड्डी तोड़ने के लिए शिक्षा का नया उपक्रम रचा था। ब्राह्मण वर्ग को श्रेष्ठता उसके अध्ययन, ज्ञान और त्याग के कारण प्राप्त हुई। आत्मविस्मृति में देश को सुलाने का जो उपक्रम अंग्रेजी सत्ता ने रचा, स्वतंत्रता के

बाद हमने उसे विस्थापित करने की कोई कोशिश नहीं की। इसी कारण राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होने के बाद भी पराधीन मानसिकता से ग्रस्त हैं।

हम चाहें या न चाहें, विधाता चाहता है कि भारत का पुनर्जन्म हो। हम परीक्षा की घड़ियों से मुँह भले ही छिपाना चाहें, नियति का विधान हमें अपने 'स्व' को समझने के लिए विवश कर रहा है। इसे विधि का विधान ही मानना चाहिये कि उसने इस परीक्षा में सफल होने का दिशा-बोध कराने वाला एक निस्वार्थ, त्यागी और समर्पित नेता भी भारत को वरदान स्वरूप प्रदान किया है।

याद करें 2014 से पहले का समय जब सब ओर भ्रष्टाचार की चर्चा होती थी, आतंकवादियों के आक्रमण-मुंबई के ताज होटल पर ही नहीं, दिल्ली के संसद भवन तक पहुँच चुके थे। अक्षरधाम हो या संकट मोचन आतंकवादी अपने काले कारनामों को अंजाम देने में सफल हो जाते थे। सेना की हथियारों की माँग मंत्रालयों की फाइलों में बन्द रहती थी। अर्थव्यवस्था पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया था। पूरे देश में निराशा का भाव पसर चुका था। इसकी तुलना निष्पक्ष ढंग से करने की आवश्यकता है। आज सेनाओं के पास आधुनिक शस्त्र हैं। सीमा तक आसानी से पहुँचने वाली सड़कें हैं। सीमाओं पर युद्धक विमानों के लिए हवाई अड्डे हैं, हैलिपेड हैं। आतंकवादियों की बन्दूकें खामोश हैं। उनका सफाया करने की रफ्तार तेज है। तभी तो चीन को गलवान में पाठ सिखाया जा सका। ठीक है कि चीन अब पाकिस्तानी आतंकवादियों का सहारा लेकर भारत को अशान्त रखने की साजिश रचेगा, पर आत्मनिर्भरता का सबक पढ़ रहा भारत चीन की आर्थिक रीढ़ को गला देगा। वैश्विक परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही हैं और युद्ध के तरीके भी बदलेंगे। इसी तरह कोरोना का संकट भी देश झेल रहा है। बहादुरी से सामना कर रहा है। जनता धैर्यपूर्वक स्थिति से टकरा रही है। तभी तो मृत्युदर भी कम है और महँगाई भी नियंत्रित है।

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि ऐसी संकटकालीन परिस्थितियों में असन्तोष का स्वर उठाने वालों को क्या कहा जाये? राष्ट्रबोध को जो ताकत देने का पुण्य नहीं कमा सकते, वे खामोश रहकर उसे खंडित करने के पाप से तो बच ही सकते हैं। देश में सरकार चाहे जो हो उसकी ताकत जनता के संगठित राष्ट्र-बोध में ही निहित होती है। विखण्डित राष्ट्र का कोई भविष्य नहीं होता। यदि हम विजय-पथ के राही बनना चाहते हैं तो हमें संगठित होकर राष्ट्र-बोध को अंगीकार करना होगा। संकटों का सामना करते हुए भारत का जो विराट तेजस्वी स्वरूप निखर कर सामने आएगा उसका श्रेय किसी व्यक्ति को या दल को नहीं, भारत के एक सौ पैंतीस करोड़ जन-गण को मिलेगा। भारत के पुनर्जन्म की महर्षि अरविन्द की भविष्यवाणी तभी सार्थक भी होगी।



अक्षरा

अंक 185 अगस्त 2020

कठिन समय में डायरी

- रमेशचन्द्र शाह



जन्म - बैसाख त्रयोदशी 1936।
शिक्षा - एम.ए., पी-एच.डी।
रचनाएँ - विभिन्न विधाओं में 80 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - पद्मश्री, साहित्य अकादमी, व्यास सम्मान, सहित अनेक पुरस्कारों व सम्मानों से अलंकृत।

दिनांक 9 मार्च, 2020

युवाल नोह- हरारी का 'होमो सेपियंस' पढ़ा था अभी पिछले माह। अब उसी की एक और किताब से जूझना पड़ रहा है जिसका नाम है-'इक्कीसवीं सदी के लिए इक्कीस सबक'। सचाई आनंददायी और रुचिकर भी होनी चाहिए-यह आग्रह क्यों रहता है और क्यों रहना चाहिए- एक सत्यकाम और विद्याव्यसनी दिलो-दिमाग को? इतने तेज तर्रार और अवाँगार्द (अग्रगामी) लेखक को तो जरूरी कर्त्तव्य की तरह पढ़ना-समझना अनिवार्य है, यह मानकर ही चलना चाहिए ना? इसमें 'आत्मावसाद'- जिससे यह लेखक ताउम्र जूझता रहा है और इस खुशफहमी में रहा आया है कि उसने सचमुच काबू पा लिया है उस पर, वह अवसाद इस तरह क्यों इस किताब को पढ़ते हुए उस पर बारबार हावी हो जाता है? अभी इसके तीसरे भाग के जिस अध्याय की गिरफ्त में हूँ, उसका शीर्षक है-'परिस्थिति पर अपना नियंत्रण खोता जा रहा 'होमो सेपियंस'...।' जिन तीन दुर्दांत प्रश्नों से टकरा रहा है लेखक यहाँ, वे यूँ हैं-

एक-क्या मनुष्य अपनी दुनिया का ठीक से संचालन करना और उसे अर्थ देना जारी रख सका है? रख पाएगा आगे भी-आसन्न भविष्य में? लक्षण तो सारे प्रतिकूल ही लग रहे हैं।

दो-जैव प्रौद्योगिकी और 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' मानवता के समक्ष किस तरह का खतरा पैदा कर रहे हैं, क्या इसका पर्याप्त एहसास है आज के मनुष्य को?

तीन-मानवजाति का उत्तराधिकार किसे प्राप्त हो सकता है? और कौन-सा ऐसा नया मज़हब होगा जो इस लगातार क्षरित होते मानववाद की जगह ले सकेगा?

चलो, कम से कम यह लेखक 'मानववाद' को भी एक मज़हब ही तो माने ले रहा है ना? ग़नीमत है-इसीलिए, कि प्रश्नातीत मलकद यानी 'डॉग्मा' पर आधारित सारे मज़हब अपनी बची-खुची साख भी गवाँ चुके हैं। सर्वग्रासी धर्मग्लानि के इस युग में वास्तविक धर्म-संस्थापना की संभावना या आशा का कोई संकेत उभरता है? खासकर तब, जबकि हरारी के ही कथनानुसार 'स्वतंत्रता नामक शब्द 'आत्मा' शब्द की ही तरह पूरी तरह अर्थहीन हो चुका है।' यह भी, कि 'अधुनातन विज्ञान न सिर्फ संकल्प स्वातंत्र्य' (फ्री विल) के उदारवादी विश्वास को खोखला कर चुका है, बल्कि जैविक विज्ञान के मुताबिक तो मनुष्य

के तथाकथित अद्वितीय और प्रामाणिक 'स्वत्व' में भी उतनी ही प्रामणिकता या यथार्थ है जितनी कभी 'अमर आत्मा' की अवधारणा में उसे लगती थी। मनुष्य 'इनडिविजुअल' नहीं 'डिविजुएल' है पूरी तरह : हरारी के शब्दों में।

■ यहाँ पर यह लेखक हमें अपनी सूझ-बूझ से चकित करता हुआ अचानक वर्तमान युग के एक विलक्षण साहित्यकार बोर्खेज़ की सुविख्यात कहानी 'अ प्रॉब्लम' का उल्लेख करता है और कहता है-'राष्ट्रों, देवताओं और रुपए-पैसे की तरह यह 'स्वत्व' भी एक गढ़ा गया किस्सा भर है। तब फिर जीवन का अर्थ क्या है? जैव-रासायनिक 'एलगरिद्मों' के संयोजन से गढ़ा गया एक किस्सा भर है, यह तथाकथित स्वतंत्र व्यक्ति।'

हरारी सवाल उठाता है यहीं पर, कि 'जब हमारे पास चेतनाविहीन किंतु अक्लमंद और हर तरह के प्रवीण-पटु 'एल्गोरिद्म ही एल्गो रिदम हो जाएँगे तब चेतना-संपन्न मनुष्य क्या करेंगे? ज्योंही हमारे लिए गूगल, फेसबुक और अन्यान्य 'एल्गोरिद्म' सर्वज्ञ मार्गदर्शक बन जाते हैं, वे एजेण्टों और अंततः संप्रभु सत्ताओं के रूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इक्कीसवीं सदी की नई प्रौद्योगिकी और प्रविधियाँ मानववादी क्रांति को पूरी तरह उलट कर मनुष्य को उसकी प्रभुता से वंचित कर दे सकती हैं और सारा प्रभुत्व अमानवीय एल्गोरिद्मों को सौंप दे सकती हैं।

यहीं हरारी इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जिस तरह समाजवाद ने भाप और बिजली के जरिए मानव-मुक्ति का आश्वासन देकर दुनिया पर कब्जा जमाया था, उसी तरह नये औद्योगिक मज़हब ऐल्गोरिदमों और जींस (Genes) की मार्फत एक और नई मुक्ति का आश्वासन रचके दुनिया को जीत लेंगे। 'डाटाइज़्म' वह नया मज़हब है, जो नया-नया पनपा है, जो न ईश्वर का उपासक है, न मनुष्य का। वह केवल और केवल मात्र 'डाटा' का उपासक है। कुल मिलाकर इक्कीसवीं सदी का विज्ञान एक ऐसे सर्वव्यापी-सर्वग्रासी मताग्रह की ओर बढ़ रहा है, जिसका दावा है कि सारे प्राणी मात्र 'एल्गोरिद्म' हैं और जीवन मात्र 'डाटा-प्रोसेसिंग'। लक्षण साफ दिखाई दे रहे हैं कि मनुष्य की बुद्धि, मनुष्य की चेतना से अलग-थलग हो रही है और, जल्दी ही यह अचेतन, किंतु इस तरह की बुद्धिमत्ता और प्रवीणता से लैस 'एल्गोरिद्म' हम मानवजीवों को खुद हमसे बेहतर और अचूक ढंग से समझने लगेगा। इससे बड़ी विडंबना मनुष्य की भला और क्या होगी?

दिनांक 14 मार्च, 2020

कल अखबार में एक बहुत ही दिलचस्प और (दिमागचस्प भी) लेख पढ़ने में आया था जो अभी हाल पढ़ी हरारी की किताब में से निकले अप्रिय निष्कर्ष के विपरीत-और शायद इसीलिए मन को एक राहत, एक तसल्ली सी बख्शता प्रतीत हो रहा था। पता नहीं कहाँ गई वह कटिंग! इस उम्र में जब अपनी ही लिखी किताब-सँभाल के रखी किताब-तक अक्सर ही अदृश्य-अगोचर हो जाती है, अखबार की कतरन कहाँ हाथ लगेगी? लेखक का नाम भी तो याद नहीं आ रहा। पर बातें शायद याद आ जाएँ। मन-माफिक बातें इतनी जल्दी कैसे गुम हो जाएँगी? प्रवीण? नहीं शायद प्रणव नाम था लेखक का।

वह लेख 'टाइम्स ऑफ इंडिया के एक कॉलम में छपा था क्या था उस लेख का कथ्य? याद करने की कोशिश करता हूँ।' सुनिये। वह कहता है :-

चेतना का लक्षण या स्वभाव क्या है, यह उपनिषदों का सबसे गहरा सरोकार लगता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में जहाँ मानव-चेतना के पाँच आवरणों में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोशों की चर्चा है, वहीं मांडूक्य उपनिषद् में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था की। जिनमें तुरीय को विशुद्ध चेतना का दर्जा हासिल है। उसी तरह ऐतरेय उपनिषद में स्वयं ब्रह्म को ही चेतना के रूप में दर्शाया गया है। मानवीय और पारमार्थिक (ट्रांसेन्डेन्टल) चेतना पर विचार करते हुए ऐतरेयोपनिषद् प्रारंभ ही यहाँ से करता है कि एकमात्र सत्य तो 'आत्मन्' ही है। आरंभ में केवल आत्मन् ही था-सृष्टि से पूर्व, सृष्टि के कारण की तरह। आगे ऐतरेय बताता है कि कैसे इस आद्य प्राथमिक आत्मन् तत्त्व ने कई चरणों में ब्रह्मांड की रचना की। शुरुआत 'टाइम' और 'स्पेस' से, और फिर दोनों के पीछे कार्यरत सारतत्त्व को मानव-जीव के रूप में प्रकट करते हुए। कैसे मानव देह आत्मन् का सर्वप्रथम प्राकट्य है? इसी पर से जिज्ञासा जगती है कि हमारा आंतरिक ब्रह्मांडीय स्वरूप क्या है? मैं कौन हूँ? उपनिषदों का यह आधारभूत प्रश्न ऐतरेय में ही सबसे पहले उभरता है-हमें यह प्रतीति कराते हुए कि, मानव अपनी इंद्रियों और मन तथा बुद्धि के अतिरिक्त भी कुछ है। और वह 'कुछ' वास्तव में 'आत्मा' ही है।

तो 'आत्मन्' कैसे अपने को धारण, और व्यक्त करता है? जन्म लेने की प्रक्रिया द्वारा। यानी, पहले गर्भाधान से, फिर जन्मोपरांत पालन-पोषण से, फिर मृत्यु के बाद देहांतर-प्राप्ति से। . . . कर्मानुसार। इस प्रकार आत्मन् के तीन जन्मों की चर्चा से ऐतरेय उपनिषद् स्पष्ट करता है कि यह विश्वव्यापी संस्कार-शृंखला सिर्फ एक संजाल है। यथार्थ नहीं है। तत्पश्चात् वापस आत्मन्-विमर्श में लौटते हुए यह उपनिषद् हमें बताता है कि चेतना ही स्वयं आत्मा है। न कि वे अनेक 'स्व', जो हमें चेतना की अनेक परतों में भासते हैं। वे सारी परतें 'प्रज्ञान' में-विशुद्ध चेतना में समाहित हैं। जहाँ मांडूक्य उपनिषद् शुद्ध चेतना को तुरीय की तरह परिभाषित करते हुए उसे समाधि तुल्य निरूपित करता है, वहाँ ऐतरेयोपनिषद् उसे 'प्रज्ञानं ब्रह्म' कहता है अर्थात् देहासीन शुद्ध चेतना। जो बुद्धि को आलोकित करती हुई भी बुद्धि से परे है। इस तरह 'प्रज्ञानम्' द्वारा हमें इस अलौकिक सृष्टि को यथावत् समझने के लिए तैयार किया गया है। केवल उस महत्तर चेतना के एक अंश की तरह। लेख विचारोजक है सचमुच पते की बात कहता हुआ।

मार्च 15, 2020

अभी 14 अप्रैल तक तो यह कर्फ्यू ऐसे ही रहना है, आज पता चला। अखबार तो कभी से बंद कर रखा है। टी.वी. न्यूज़ सुनने को भी मन नहीं करता। आत्मावसाद पर विजय पा ली है, यह विश्वास मेरा क्या मात्र भ्रम था? अभी पिछले दिनों किसी ने चीन के बारे में कुछ दहला देने वाली बातें लिखी थीं-खुद मेरे भीतर भी उसी तरह की शंका रही है। क्या समूचा विश्व ऐसे अमानुषिक कृत्य के विरुद्ध एकजुट नहीं हो सकता? लेकिन, दूसरे राष्ट्र भी तो इस अपराध में भागीदार हैं। जो निरपराध हैं वही सबसे ज्यादा भुगत रहे हैं।

■ कल शाम हन्ना अरेण्ट पर बहुत ही जोरदार फिल्म देखी। यह वही विदुषी है, जिसने कहा था कि हाइडेगर के दर्शन पर सबसे प्रामाणिक और मर्मग्राही पुस्तक एक भारतीय जे.एल. मेहता ने लिखी है। तब तक

मेहता जी से मेरी खासी जान-पहचान हो चुकी थी। घनिष्ठता कहूँ तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसी बीच गोविंद चंद्र पांडे जी का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्याख्यान पढ़ने का मौका मिला। 'न्यूरोसाइंस, कॉन्शसनेस एंड फिलासफी'- शीर्षक। कितना बड़भागी हूँ कि ऐसे उच्चकोटि के मनीषियों का सत्संग और अहेतुक स्नेह मुझे निरंतर उपलब्ध होता रहा। चेतना को लेकर ऐसा तलस्पर्शी विवेचन कहीं और तो मैंने देखा नहीं। पर मेरे साहित्यिक बंधुओं में कितने होंगे जिन्होंने इसे पढ़ा क्या, देखा तक होगा? लगता ही नहीं ऐसी चिंताओं से उनका कुछ भी लेना-देना हो सकता है।

27 मई, 2020

शल्य जी से और कमल से भी लंबी बातचीत हुई। कमल ने बताया किस तरह चीन के ही एक डॉक्टर ने सर्वप्रथम इस कोरोना वायरस के बारे में यथातथ्य खोजपूर्ण वृत्तांत लिखा था। पर चीनी सरकार ने उसे जेल में बंद कर दिया। तदुपरांत वह डॉक्टर कुछ दिनों बाद इसी बीमारी से मर भी गया। हाल ही में चीन ने जो बहुत बड़ा आयोजन वुहान में किया था, जिसमें दुनिया भर से आमंत्रित लोगों का जमावड़ा था, बीमारी वहीं से फैली-ऐसा कुछ लोगों द्वारा माना जा रहा है ।

सबसे सनसनीखेज वाकया जो कमल ने बताया वह यह, कि अभी हाल ही में चीनी सरकार ने उसी दिवंगत डॉक्टर को एक सबसे महत्त्वपूर्ण सम्मान घोषित किया है। निर्लज्ज और पाखंडपूर्ण, गैरजिम्मेदाराना आचरण की यह पराकाष्ठा है। कमल यह भी कह रहा था कि ट्रंप ने अरबों डालर का मुकदमा दायर किया है चीन पर-अमेरिका को जो क्षति पहुँची, उसके लिए। यह भी, कि चमगादड़ इस वायरस का सबसे प्रिय ठिकाना है, जिसका मांस चीन में एक स्वादिष्ट व्यंजन की तरह लोकप्रिय है। कदाचित् यह भी कारण रहा हो इस महामारी के तेजी से फैलने का।

7 जून, 2020

मार्च माह का आरंभ ही कोरोना वायरस के प्रकोप का आरंभ था। जल्द ही कई जगहों पर लॉकडाउन भी लागू कर दिया गया था। आज की खबर है कि कल यानी 8 जून से लॉकडाउन एकदम हटाया तो नहीं, परंतु कम किया जा रहा है। इसका मतलब यह नहीं कि संकट मिट गया है। कोरोना संक्रमण तो अभी भी जारी है। उसके मामले कुछ जगहों को छोड़कर बाकी जगहों पर बढ़ ही रहे हैं। परंतु घोर आर्थिक संकट सरकार को यह फैसला-सख्ती ढीली करने का-लेने को विवश कर रहा है। तीन महीने हो चुके इस प्रकोप को आरंभ हुए। और अभी भी यह सुनने में आ रहा है कि जून से कहीं ज्यादा इस महामारी के बढ़ने का खतरा जुलाई में है।

5 जून, 2020

युवाल नोह हरारी की किताब का आखिरी अध्याय फिर से देख रहा हूँ। जो इक्कीस सबक उसने इक्कीसवीं सदी के लिए सुझाए हैं, उनमें से कुछ का सार-संक्षेप इस प्रकार है :-

एक-व्यापक और अभूतपूर्व मोहभंग अभी तक के आ

कलनों से। इतिहास के अंत की जो घोषणा की गई थी, वह फिलहाल स्थगित हो गई है। टेक्नोलॉजिकल क्रांति के फलस्वरूप जल्द ही करोड़ों नहीं-अरबों लोग 'जॉब मार्केट' से बाहर खदेड़ दिए जाने वाले हैं। इस संकट को सुलझाने

का कोई कारगर उपाय किसी को नहीं सूझ रहा। इससे जो सामाजिक-राजनैतिक उथल-पुथल होने वाली है, किसी भी विचारधारा के पास उसका सामना या हल करने का सामर्थ्य नहीं है।

दो-आधिकारिक सत्ता अब मनुष्य के हाथों से फिसल कर 'अलगोरिद्मों' के पास पहुँच गई है। इसका परिणाम होगा-सारे उदारवादी विश्वासों का भहरा जाना और डिजिटल तानाशाहियों (डिक्टेटरशिपों) का बोलबाला।

तीन-सारी संपत्ति और सत्ता मुट्ठी भर 'एलीटों' के हाथ में सिमट जाएगी। शोषण के बदले स्वयं मनुष्यता के ही पूरी तरह नि:शक्त और अप्रासंगिक हो जाने का खतरा मंडरा रहा है मानवता पर।

चार-भविष्य उन्हीं का है जिनके पास 'डाटा' है।

पाँच-मानव-सभ्यताओं का वैविध्य समाप्त। अब दुनिया में एक ही सभ्यता है (होगी)

छ:-राष्ट्रीयता भी निरर्थक। वैश्विक समस्याएँ, वैश्विक समाधान ही माँगती हैं।

सात-ईश्वर अब सिर्फ 'नेशन' का काम पटाने तक सीमित हो जायेगा।

आठ-राष्ट्रों और धर्मों को अपनी औकात समझ लेनी है। दुनिया में उनकी जगह और साख कितनी सिकुड़-सिमट गई है, इसका सही अहसास तो उन्हें अब जाकर हो रहा है।

नौ-मानव इस मुगालते में कत्तई न रहे कि वह सृष्टि का केंद्र है।

दस-फिजूल नाम मत लो ईश्वर का। न दुहाई दो उसकी। कोई अर्थ नहीं इसका।

ग्यारह-धर्मनिरपेक्षता यही है-अंगीकार करना अपनी छाया को।

बारह-सत्य क्या है? मात्र यह स्वीकार, कि हम जितना जो कुछ सोचते हैं उससे कम ही जानते हैं।

तेरह-न्याय? न्याय की हमारी हर अवधारणा अब बीती बात हो चुकी।

चौदह-हम उत्तर-आधुनिकता की तरह उत्तर-सत्य के युग में दाखिल हो चुके हैं सत्यनिष्ठा अब मूल्य नहीं रही।

पन्द्रह -शिक्षा का अर्थ है-यही समझ लेना और मान लेना, कि एकमात्र जो नित्य वस्तु है, वह है निरंतर परिवर्तन।

सोलह-अर्थ क्या है जीने का, या संसार का? यही, कि जीवन कोई कहानी नहीं है।

■ अंत में लेखक जिस चीज पर आता है, वह है-ध्यान, 'मैडिटेशन। युवाल नोह हरारी नामक यह प्रख्यात बुद्धिजीवी लेखक रोज 'विपश्यना' करता है। और कहता है कि 'मैं इसलिए रोज सुबह प्रसन्न और तरोताजा होकर जागता हूँ। उसने 'विपश्यना शिविर' में भाग लिया था। इस ध्यान पद्धति के आरंभकर्ता हैं- एस.एन. गोयनका, उन्हीं से सीधे सीखी है हरारी ने विपश्यना। सीधा इसका मार्ग है-पालथी मार कर बैठना और अपनी आती और जाती साँस पर ही ध्यान पूरी तरह एकाग्र करना। और कुछ भी सोचना-महसूसना नहीं। संपूर्ण एकाग्रता साँस लेने और छोड़ने की क्रिया पर एकाग्र रहे। हरारी कहता है-यह सर्वाधिक और सर्वोच्च महत्त्व की बात है जो मैंने अपने समूचे जीवन में सुनी, जानी और सीखी। उसी के शब्दों में . . .'असली रहस्य और मर्म जीवन का यह नहीं है कि मरने के बाद हमारा क्या होता है? बल्कि यह है कि मरने से पूर्व क्या होता है? यदि तुम मृत्यु को समझना चाहते हो, तो तुम्हें पहले जीवन

को समझना पड़ेगा। सब कुछ क्षणिक है, क्षणभंगुर है। तब फिर क्या वह वस्तु है जो इस जीवन को धारण किये हुए है? हरारी कहता है कि-जैसे-जैसे विपश्यना शिविर आगे बढ़ता जाता था, हम छात्रों को यही सिखाया जाता है कि तुम्हें न केवल साँस के आने और जाने का निरीक्षण करना है बल्कि समूचे शरीर में जो भी स्पंदन-हरकतें हों उनको सबको देखना-ध्याना है। विपश्यना पद्धति इसी अंतर्दृष्टि पर आधारित है कि चित्त-प्रवाह का सीधा संबंध और जुड़ाव देह में हो रहे 'सेंसेशन्स' से जुड़ा है। हम हमेशा अपने शरीर के 'सेंसेशनों' से प्रतिकृत होते रहते हैं। हमें किसी सिद्धांत या पुराण (माइथोलॉजी) का हवाला नहीं दिया गया। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य जो विपश्यना से मुझे उपलब्ध हुआ, वह यही था, कि मेरे दुःखों का सबसे गहरा स्रोत मेरे मन के ही विन्यासों में निहित है। जब मैं कोई अपेक्षा करता हूँ और वह पूरी नहीं होती, तो मेरा दिलोदिमाग उस पर कैसे प्रतिक्रिया करता है? दुःख निराशा- क्षोभ उत्पन्न करके। दुःख यानी, वेदना कोई वस्तु नहीं है। वह एक मानसिक प्रतिक्रिया भर है, जो मेरे मन ने ही उपजाई है। यह समझ लेना पहला कदम है-और अधिक दुख न उपजाने की दिशा में।

'उस पहले शिविर में भाग लेने के उपरांत'-हरारी आगे कहता है-मैंने नित्य प्रति दो घंटे ध्यान में बैठने का क्रम जारी रखा। साथ ही हर साल एक माह के लिए एकांतवास अपनाने का भी। वह यथार्थ से पलायन करने का नहीं, बल्कि यथार्थ से वास्तविक संपर्क में प्रतिष्ठित होने का मार्ग है। यह साधना कभी भी मेरे वैज्ञानिक शोधकार्य में बाधक नहीं हुई।' यहीं पर हरारी इस तथ्य को भी बलपूर्वक रेखांकित करता है कि लोग मन को मस्तिष्क मान लेने की भूल करते हैं, जबकि दोनों एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। ब्रेन (दिमाग या मस्तिष्क) एक भौतिक संजाल है-न्यूरॉन्स और जैव रसायनों का। जबकि मन (माइंड) एक वैयक्तिक अनुभवों का प्रवाह। जैसे कि पीड़ा, उल्लास क्रोध, अनुराग इत्यादि। अपने मन का निरीक्षण करना ही सबसे आवश्यक और कठिनतम चुनौती है। प्राचीनों ने इस प्रक्रिया को सर्वाधिक महत्त्व दिया। उसी के लिए उन्होंने 'ध्यान' शब्द का आविष्कार और प्रयोग किया। 'विपश्यना' पद्धति की खोज का श्रेय महात्मा बुद्ध को दिया जाता है। गोयनका जी ने हमें सुझाया कि और सब छोड़कर केवल मात्र अपने अनुभव पर एकाग्र होना है। वही ध्यान है। और वही विपश्यना। लोग भ्रमवश (एक्सटेसी) के पीछे पड़ते हैं। जबकि सारे सत्यों का सत्य यह है कि तुम्हारी चेतना ही इस विश्व का सबसे गहरा और सर्वोच्च रहस्य है। ध्यान वह अनिवार्य साधन या औजार है-जो मन का प्रत्यक्ष निरीक्षण करने की क्षमता में हमें प्रतिष्ठित करता है।

यदि हम विदेशी संस्कृतियों को या सुदूर नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कठोरतम परिश्रम करने को तैयार हो जाते हैं तो क्यों नहीं हम उतना ही परिश्रम स्वयं अपने मन को समझने के लिए करने को तैयार हो सकते? क्या यह उतना ही अनिवार्य कार्य नहीं है? क्या हमारे लिए यही बेहतर नहीं होगा कि हम-इससे पहले, कि यांत्रिक कलन-विधियाँ-यानी 'अलगोरिद्म' इत्यादि हमारे मन को विस्थापित करके उसकी जगह हड़प लें, हम अपने मन को समझने की साधना करें और उसमें उत्तीर्ण होकर दिखा दें।

एम-4 निराला नगर,
दुष्यन्त मार्ग, भदभदा रोड,
भोपाल-462002 (म.प्र.)
दूरभाष-0755-2775314
मो.-9424440574

चीनी कम्युनिज्म को किसने ताकत दी ?

- शंकर शरण



जन्म - 4 जनवरी 1961।
जन्म स्थान - जमालपुर, बिहार।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ - भारतीय इतिहास लेखन जैसी गंभीर पुस्तक सहित लगभग दर्जन भर पुस्तकें प्रकाशित।

महान रूसी लेखक को जब सोवियत कम्युनिस्ट सत्ता ने 1974 में देश-निकाला दिया, तब वे पहले पश्चिम जर्मनी और फिर अमेरिका में रहने गए। वर्ष 1975-76 में अमेरिका और इंग्लैंड में दिए गए उनके चार व्याख्यान और एक बीबीसी इंटरव्यू का संकलन 'वॉर्निंग टु द वेस्ट' (पश्चिम को चेतावनी) नामक पुस्तक में है। फिर, 1978 में उनका हार्वर्ड विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध व्याख्यान भी हुआ। उन बातों को पढ़ें, तो आज अमेरिका व यूरोप में दिखती हालत की भविष्यवाणी मिलती है। सोल्झेनित्सिन ने बार-बार समझाने की कोशिश की, जो उनके संपूर्ण लेखन में है, कि राजनीतिक, राष्ट्रीय, आर्थिक, आदि सभी मुद्दों से ऊपर मानवीय स्वतंत्रता, नैतिकता, यानी अच्छाई-बुराई एवं उचित-अनुचित की चिंता है। दूसरों की स्वतंत्रता की दुर्गति से आँख चुराकर आप अपनी स्वतंत्रता लंबे समय तक बनाए नहीं रख सकते। युद्ध से बचने, 'शान्ति' रखने, किसी देश का 'अंदरूनी मामला' कहने, आदि बहानों से आज दुनिया के किसी देश में तानाशाही, अत्याचारी सत्ता के साथ मैत्री या सहज आर्थिक संबंध बनाना न केवल अनैतिक, वरन् स्वयं अपने लिए गड्ढा खोदने जैसा है।

सोल्झेनित्सिन की सीख-आज चीन का मूल्यांकन करने में सोल्झेनित्सिन की चेतावनी हू-ब-हू सही साबित हो रही है। उन व्याख्यानों में सोल्झेनित्सिन ने प्रामाणिक रूप से दिखाया कि सोवियत संघ की पूरी ताकत शुरू से पश्चिम, विशेषत: अमेरिकी सहयोग से बनी। हर मुश्किल मौके पर अनाज, वस्तुएँ, तकनीक, आदि 'मानवीय' मदद के रूप में दी जाती रहीं, जिसका उपयोग कम्युनिस्ट सत्ता ने अपनी ताकत बढ़ाने, तथा क्रूरता व दक्षतापूर्वक जनता का दमन करने, एवं दूसरे देशों में कम्युनिस्ट कब्जा बढ़ाने में किया। पश्चिमी देश इससे गाफिल रहे। आज, वही कम्युनिस्ट मानसिकता उनके अपने मानवीय, लोकतांत्रिक, उदार मूल्यों को तहस-नहस कर रही है, जिसे उन्होंने फलने-फूलने में उदारतापूर्वक मदद दी थी।

वही कम्युनिस्ट चीन के साथ हुआ। अभी जो हाँग-काँग में हो रहा है, वह दस गुनी मनमानी, बेहिसाब क्रूरता और हिंसा के साथ पहले तिब्बत और चीनी जनता पर हुआ था। किन्तु भारत, और भारत के ही कारण यूरोप, अमेरिका सबने उसकी अनदेखी की। फिर, उसी लाल चीन के साथ संबंध बनाकर उसे आर्थिक, तकनीकी महाशक्ति बनने में भरपूर मदद की। अब वही चीन अमेरिका को आँखें

दिखा रहा है, यूरोप को धमका रहा है, और पड़ोसियों की भूमि व समुद्री क्षेत्रों पर घुसपैठ कर रहा है। सोल्झेनित्सिन के अवलोकन के अनुसार, चीन को इस स्थिति तक पहुँचने में संपूर्ण लोकतांत्रिक विश्व ने मदद दी। एक अनैतिक काम को 'व्यावहारिक' समझ कर किया, जिसकी लपट अब उन तक पहुँच रही है।

सोल्झेनित्सिन ने उन आलोचनाओं का भी जबाव दिया था, जो उनकी बातों पर की गई थीं। जैसे, 'तो क्या यूरोप को सोवियत संघ से परमाणु युद्ध कर लेना चाहिए था?' सोल्झेनित्सिन का उत्तर था कि उसकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी। समय के साथ सोवियत टैंक ही आपके घर में घुस आएँगे, और बिना युद्ध के आप पर कब्जा कर लेंगे। अर्थात् यदि उस सत्ता की अनैतिकता को आप रेखांकित नहीं करते रहे, उसे मजबूत होने से सचेत रूप से नहीं रोकते रहे, तो वह दिनों-दिन बलशाली होते हुए अंततः आप पर चढ़ेगी ही। क्योंकि यह उसका सिद्धांत है! 'पूरी दुनिया में कम्युनिज्म' या 'पूरी दुनिया में निजामे-मुस्तफा' जैसे मतवाद मानने वाले संगठन का, सत्ता के साथ किसी नाम पर सहयोग, सामंजस्य बनाना, उस घातक मतवाद को मजबूत और अपने को कमजोर करना है। अधिक से अधिक ये होगा कि आपके बदले आपकी अगली पीढ़ियाँ उसकी शिकार बनेंगी। कथित 'शान्ति', 'सामंजस्य' या 'धर्म-अधर्म समभाव' का तात्कालिक सुख भोगते हुए आप भले बचे रहें, पर आपकी संतति, देश, समाज या धर्म नहीं बचेगा।

कम्युनिस्ट चीन की स्थिति के विश्लेषण करने में उक्त बातों का ध्यान रखना उपयोगी है। हालिया वर्षों में चीनी सत्ता ने भारत पर धौंस-पट्टी की पुरानी तकनीक पुनः दुहराई है। दलाई लामा के अरुणाचल कार्यक्रम पर आपत्ति, असम में भूपेन हजारिका पुल के उद्घाटन पर कड़वी टिप्पणी, सिक्किम सीमा पर हरकत, और अब गलवान घाटी में चीनी कम्युनिस्ट सत्ता ने भारत को धमकाया है। कुछ समय पहले चीनी विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता ने भारत-चीन संबंधों में बिगाड़ का कारण यहाँ 'हिन्दू राष्ट्रवादी' सरकार होना भी बताया था। यह परोक्षतः यहाँ के राजनीतिक समूहों को उकसावा भी है। पर भारत की ओर से चीनी कम्युनिस्ट सत्ता के ऐसे उकसावों का प्रत्युत्तर नहीं दिया गया। यह चुप्पा नीति सोल्झेनित्सिन की चेतावनी का ध्यान दिलाती है।

जबकि इस मामले में भारत की स्थिति चीनी कम्युनिस्ट तानाशाही की तुलना में बेहद मजबूत है। चीन में जनता या सामाजिक संगठनों को स्वतंत्रतापूर्वक बोलने, लिखने, प्रचार करने का अधिकार नहीं। जबकि भारत में है। अतः यहाँ सरकार के अलावा सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक संगठन भी खुल कर चीन को कड़ा उत्तर दे सकते थे पर उल्टे सहयोग किया गया! चीनी जनता के दमन, और तिब्बत, ताइवान, हाँग-काँग के भवितव्य से आँखें मूँद ली गईं। हमें चीनी जनता और वहाँ की कम्युनिस्ट सत्ता में अंतर रखना चाहिए था और इसे रेखांकित करते हुए अपनी नीति समायोजित करनी चाहिए थी।

लोकतंत्र की ताकत-उदाहरण के लिए, अभी हाँग-काँग में नागरिक अधिकारों का दमन हो रहा है। यह भारत के लोकतांत्रिक दलों, सामाजिक संगठनों, छात्रों, लेखकों, बुद्धिजीवियों, अखबारों और टीवी के लिए खुला मौका था कि वे चीनी कम्युनिस्ट तानाशाही की कड़ी निंदा करते हुए, आंदोलनकारी नागरिकों के समर्थन में अभियान चलाते। इससे चीनी सत्ता पर बहुत अधिक दबाव पड़ेगा। स्वयं चीन, हाँग-काँग और तिब्बत में आवाज उठाने वालों

का उत्साह बढ़ेगा। वास्तव में, हम जितनी कल्पना करते हैं उसकी तुलना में चीनी कम्युनिस्ट सत्ता पर बहुत अधिक चोट पड़ेगी। ऐसा भी नहीं कि ऐसा करना हमारे सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक संगठनों के लिए कोई नया काम है। भारत में दक्षिण अफ्रीका, कोरिया, वियतनाम, आदि देशों की जनता के लिए खड़े होकर आवाज उठाने की परंपरा रही है। यह सारी दुनिया का लोकतांत्रिक चलन है। स्वयं भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के समय अमेरिका और यूरोप में लोग हमारे लिए आवाज उठाते थे। इसलिए, चीनी, हाँग-काँग और तिब्बत की जनता पर उत्पीड़न पर मजबूती से विरोध करना हमारा ऐसा कर्तव्य है, जिसके विविध लाभकारी परिणाम होंगे।

चीनी कम्युनिस्ट सत्ता हमारे सामाजिक, राजनीतिक संगठनों के अभियान पर भारत सरकार से प्रतिवाद तक नहीं कर सकेगी। एक तो, क्योंकि भारतीय लोकतंत्र और संविधान के अनुसार सरकार किसी शान्तिपूर्ण विरोध, अभियान तथा वैचारिक अभिव्यक्ति को रोक नहीं सकती। दूसरे, जब स्वयं चीनी सत्ता भारतीय वामपंथियों को भड़काती है, चीनी नागरिक अधिकारों के लिए आंदोलन को भारतीय जन-संगठनों के समर्थन का विरोध कैसे कर सकती है! हमारी सरकार और सामाजिक संगठनों को समझना चाहिए कि यह सामान्य, लोकतांत्रिक कार्य चीनी कम्युनिस्ट सत्ता के लिए बहुत बड़ी परेशानी का विषय बन जाएगा।

इसीलिए, भारत के लोगों और नेताओं को अपनी चीन-नीति पर ढंग से सोचना चाहिए। राजनीति हर हाल में किसी न किसी शक्ति के सहारे चलती है। यदि चीनी कम्युनिस्ट सत्ता के पास तानाशाही और एकाधिकारी प्रचार की ताकत है, तो भारत के पास लोकतांत्रिक जनमत को अपनी आवाज किसी भी बात के लिए उठाने की ताकत है। यह आवाज अवश्य उठाई जानी चाहिए।

यदि भारतीय नेताओं, बुद्धिजीवियों ने यह पहले ही किया होता तो निश्चय जानिए कि चीनी कम्युनिस्ट सत्ताधारियों ने भारत के साथ अधिक सम्मानजनक व्यवहार किया होता। दुर्भाग्यवश नेहरू जी के समय से ही हमारी विदेश नीति अज्ञान, भ्रम, और अपने नेताओं की गल्ती छिपाने के लिए चीन से डराने की रही है। उसी दुष्प्रभाव में यहाँ राजनीतिक दलों, मीडिया और बौद्धिक-सांस्कृतिक संगठनों ने भी अपना कर्तव्य नहीं किया। इसीलिए, चीनी सत्ता हमें जब चाहे घुड़कती है और हम सुनते हैं। यह बंद होना चाहिए। भारतीय जनता स्वयं यह कर सकती है। हमें इसके मौके बार-बार मिलते हैं, जिसका हम लाभ नहीं उठाते।

पंचशील का घात किसने किया ?- जैसे, कुछ पहले चीनी कम्युनिस्ट सरकार द्वारा भारत पर 'पंचशील को कुचलने' का आरोप लगाया गया था। यह साफ-साफ चोरी और सीनाजोरी का मामला था! हमारे अज्ञान के कारण ही चीनी सत्ता को ऐसा करने का साहस होता है।

पेकिंग (बीजिंग) में 29 अप्रैल 1954 को हुआ यह समझौता भारत-तिब्बत संबंध पर हुआ था। दस्तावेज के नाम में ही दर्ज है - 'चीन के तिब्बत क्षेत्र और भारत के बीच व्यापार और संबंध के बारे में'! यह स्वयं प्रमाण है कि तिब्बत और भारत के स्वतंत्र और विशिष्ट संबंध रहे हैं, जिसे चीनी कम्युनिस्टों ने भी स्वीकार किया है। छः अनुच्छेदों के इस संक्षिप्त समझौते में पहले को छोड़ सभी अनुच्छेद केवल इसी के वर्णन हैं कि भारत-तिब्बत संबंध ''पारंपरिक रूप से'' लगभग यथावत् चलते रहेंगे। यह शब्दावली

उस समझौते में कई बार दुहरायी गयी है।

इसके अनुच्छेद 2 की पहली धारा के अनुसार, 'भारत के लामा, हिन्दू और बौद्ध मतों के तीर्थयात्री पारंपरिक रूप से चीन के तिब्बत क्षेत्र में कांग रिम्पोछे (कैलाश) तथा मयम छे (मानवसरोवर) जाते रहेंगे।' अगली धारा में, 'चीन के तिब्बत क्षेत्र से लामा और बौद्ध तीर्थयात्री पारंपरिक रूप से बनारस, सारनाथ, गया और साँची जाते रहेंगे।' यहाँ 'पारंपरिक रूप से' का तात्पर्य था कि बिना किसी रोक-टोक या विशेष दस्तावेज के आना-जाना रहेगा। इसे अनुच्छेद 5 में विस्तार से लिख भी दिया गया था।

अनुच्छेद 5 की पहली धारा के अनुसार, तिब्बत और भारत के बीच पारंपरिक रूप से व्यापार करने वाले, उनकी स्त्रियाँ, बच्चे, उन पर आश्रित लोग तथा नौकर भी पहले की ही तरह आते-जाते रहेंगे। इसके लिए केवल अपने-अपने देशों के 'स्थानीय अधिकारियों द्वारा दिया गया प्रमाण-पत्र' दिखाना होगा। इस अनुच्छेद की दूसरी धारा के अनुसार, तिब्बत और भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों के जो लोग मामूली खरीददारी या दोस्तों से मिलने जाने आदि के लिए दूसरी तरफ जाना चाहेंगे, वे भी इसके लिए स्वतंत्र होंगे। उन्हें इसके लिए 'किसी विशेष मार्ग से जाने या पासपोर्ट, वीसा, परमिट की भी बाधा नहीं होगी।' तीसरी धारा दोनों तरफ से तीर्थयात्रियों को 'कोई दस्तावेज या प्रमाणपत्र साथ रखने' से भी मुक्त करती है। उन्हें केवल सीमा पर नाम दर्ज कराना था और चेकपोस्ट के लोग ही उन्हें परमिट दे देंगे।

इस प्रकार, पंचशील समझौता प्रमाण है कि भारत और तिब्बत के संबंध स्वतंत्र, स्थापित, खुले और पारस्परिक थे। जिसमें चीन का कहीं कोई दखल कभी नहीं रहा था। इसी दखल की जमीन बनाने को 'पंचशील' समझौता करके बहाना बनाया गया, ताकि भारत सरकार से लिखवा लिया जाए कि वह तिब्बत को चीन का तिब्बत मानती है। बस इतना उद्देश्य था, ताकि पहले अँगुली पकड़ कर अंत में गर्दन पकड़ी जा सके। तिब्बती विद्रोह रोकने और भारत के कर्णधारों को सुलाए रखने के लिए ही पंचशील समझौते में वह सब लिखा गया था, ताकि वे समझें कि सब पूर्ववत् रहेगा।

अब कोई बताए कि किसने पंचशील को कुचला? क्या उसकी धाराओं के अनुरूप तिब्बती या भारतीय तीर्थयात्री बेरोक-टोक यात्रा कर रहे हैं? क्या सीमावर्ती क्षेत्रों के लोग इस पार से उस पार उसी तरह मिलने-जुलने या खरीदारी करने जा रहे हैं? क्या केवल स्थानीय अधिकारियों की अनुमति से दोनों ओर के व्यापारी, अपने परिवार, आदि के साथ आना-जाना कर रहे हैं? यदि नहीं, तो इसे किसने बंद किया? साथ ही, इसी पंचशील के पहले अनुच्छेद में दिए गए परस्पर सम्मान, परस्पर अनाक्रमण और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धांतों को किसने तोड़ा? यदि 'भूल सुधार' की सीख दी जा रही है, तो पंचशील समझौते की उक्त तमाम धाराओं के उल्लंघन की भूल का सुधार किसे करना चाहिए?

यह दिखाता है कि भारत और चीन के ऐतिहासिक सद्भावपूर्ण संबंध को चीन की कम्युनिस्ट सत्ता ने नष्ट किया, न कि भारत के हिन्दू राष्ट्रवादियों ने। इसके अनेक और उदाहरण हैं। दरअसल, हमारी गलती यह रही है कि अंग्रेजों के जाने के बाद स्वतंत्र भारत में हमने अपनी सीमा-सुरक्षा और कूटनीति की शर्मनाक दुर्गति की। तिब्बत के साथ भारत के संबंध को स्वयं बर्बाद करते हुए भारत ने 1947 के बाद तिब्बत में अपने तमाम कूटनीतिक अधिकार, कार्यालय,

सैनिक टुकड़ियाँ और टैक्स व्यवस्थाएँ अपनी ओर से खत्म कर दीं। तभी चीनी कम्युनिस्टों को छल-बल पूर्वक वहाँ कब्जे का मौका मिला। ऐसे लापरवाह देश की सुरक्षा हो ही कैसे सकती है, जिसके कर्णधार न समझें कि किसी समझौते का पालन किस बल पर होता है? केवल कागजी शब्दों पर भरोसा करना भारत के गाँधी-नेहरू नेतृत्व की वह नियमित भूल रही है जिसका भयंकर जुर्माना भारतवासी पिछले सौ साल से विविध मामलों में भरते रहे हैं।

हमें अपना मुँह खोलना चाहिए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि पिछले साठ वर्ष से हम चुप रहे। आखिर, जब चीनी कम्युनिस्ट डेढ़ सौ साल पहले के दस्तावेजों को आधार बना कर दावे करते रहते हैं, तो हमें 1914 के शिमला समझौते और 1954 के पेकिंग (पंचशील) समझौते की बातों को उठाने का और भी अधिक अधिकार है।

इसलिए हमें लगातार कहना चाहिए कि यदि चीनी कम्युनिस्ट अपने वादे के अनुसार तिब्बत की स्वायत्तता बहाल नहीं करते तो तिब्बत अपनी स्वतंत्रता के लिए और भारत उसे मदद देने को उसी तरह स्वतंत्र है जैसे कोई भी उपनिवेश अपनी मुक्ति के लिए और दूसरे स्वतंत्र देश उसकी मदद के लिए होते हैं। इस टेक पर आना ही भारत, चीन और तिब्बत के संबंधों को स्थाई रूप से सुधारने का रास्ता है।

निर्मल वर्मा ने तिब्बत को 'संसार का अंतिम उपनिवेश' बताया था। इस कड़वी सचाई को रेखांकित करना, और तदनुरूप अपना धर्म निभाना हमारा अधिकार है। भारत के सभी सामाजिक, सांस्कृतिक संगठनों को यह जोर देकर कहना, दुहराना चाहिए, और सरकार पर भी दबाव डालना चाहिए। इसके चमत्कारी लाभ हो सकते हैं। हम झूठ-मूठ कम्युनिस्ट चीन को बहुत शक्तिशाली मानने के आदी हो गए हैं। भूल गए हैं कि हरेक कम्युनिस्ट सत्ता की तरह चीनी कम्युनिस्ट शासन भी भीतर से बहुत डरा हुआ है। वह जानता है कि उसकी सत्ता को नागरिकों का समर्थन नहीं है। इसलिए कोई भी घटना, या मामूली लगने वाला नया तत्व भी, उसकी सत्ता को गिराने की शुरुआत हो सकता है।

हमारी कूटनीतिक भूलें-स्वतंत्र भारत की पहली सरकार द्वारा ही तिब्बत-चीन मामले में भयंकर भूलें की गईं। वे हिमालयी भूलें दोहरी, तिहरी थीं। ध्यान रहे कि सन् 1949 से इतिहास में भारत और चीन के बीच कोई झगड़ा तो दूर, किसी मनो-मालिन्य तक का भी प्रमाण नहीं मिलता। इसका एक कारण भारत और चीन के बीच तिब्बत जैसा महत्त्वपूर्ण बफर होना भी था। कैलाश-मानसरोवर के पास मिनसार गाँव विगत चार सदियों से भारतीय रियासत का अंग था। वह सन् 1950 तक जम्मू-कश्मीर राज्य को टैक्स देता रहा था। वह सारी व्यवस्थाएँ स्वतंत्र भारत को ब्रिटिश शासन से उत्तराधिकार में मिली थीं। उसे यथावत् बनाए रखना ही उचित होता।

हालिया विश्व इतिहास से यह भी बिलकुल साफ था कि तिब्बत की भौगोलिक स्थिति उसे रणनीतिक रूप से अत्यंत महत्त्वपूर्ण बनाती है। इसीलिए अंग्रेजों ने वहाँ सदैव नजर रखी ताकि दूसरे कुदृष्टि न लगाएँ। इसके अलावा, तिब्बत सांस्कृतिक-सामाजिक रूप से सदैव भारत से जुड़ा था। लेकिन इन सबसे अनजान नेहरू जी ने रुमानी, वामपंथी, धर्म-हीन नीतियाँ शुरू कीं। क्योंकि नेहरू चीन में कम्युनिस्ट क्रांति से सम्मोहित थे और अपनी सद्‌भावना पर स्वयं फिदा रहते थे। उनके लिए यह प्रश्न अनर्गल था कि स्वयं तिब्बतियों की इच्छा क्या है? यह सब बिना सोचे उन्होंने तिब्बत चीन के हवाले कर दिया।

मगर ऐसा करते ही भारत की सीमाएँ कम्युनिस्ट चीन से मिल गईं, जिसके बाद खटपट अवश्यंभावी थी। क्योंकि कम्युनिज्म अपनी परिभाषा से ही साम्राज्यवादी विचारतंत्र है। यह स्वतंत्र भारत की विदेश नीति का सबसे पहला शर्मनाक पन्ना है कि तिब्बत की दुर्गति करा कर भारत की सीमाएँ असुरक्षित कर ली गईं और इतिहास में पहली बार भारत-चीन संबंध खराब हुए।

इतना ही नहीं, नेहरू कम्युनिस्ट चीन को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाने और सुरक्षा परिषद की स्थाई सीट दिलाने का अभियान चला रहे थे। सन् 1950 से 1956 तक अमेरिका और सोवियत रूस, दोनों ही भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थाई सीट देना चाहते थे-जिसे स्वयं नेहरू ने ठुकराया। एक नहीं, कई बार! क्योंकि वे चीन को वह सीट दिलाना चाहते थे। यानी न केवल नेहरू ने चीन को तिब्बत समर्पित कर भारत की सीमाएँ असुरक्षित कर लीं, बल्कि आक्रमणकारी साम्राज्यवादी चीनी कम्युनिस्टों को संयुक्त राष्ट्र में विशिष्ट ताकत दिलाने का अभियान चलाया। इसके लिए भारत को दी जा रही अंतर्राष्ट्रीय पद-प्रतिष्ठा और शक्ति जिद करके छोड़ दी। यह सब नेहरू जी ने लिख-लिख कर और गर्वपूर्वक कहा है।

सन् 1950 में अमेरिकी विदेश मंत्री जॉन फॉस्टर डलेस ने भारत को सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता दिलाने की औपचारिक तैयारी शुरू कर दी थी। तब अमेरिका में भारत की राजदूत और नेहरू जी की बहन विजयलक्ष्मी पंडित ने 24 अगस्त 1950 को नेहरू को पत्र लिख कर यह बताया। इसके उत्तर में 30 अगस्त 1950 को नेहरू जी ने उन्हें फौरन लिखा कि, यह अच्छा नहीं होगा और भारत इसका विरोध करेगा।'

फिर 1955 में से फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्र की दसवीं वर्षगाँठ के अवसर पर पुनः नेहरू जी को अमेरिका और पश्चिमी देशों की ओर से सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता का प्रस्ताव किया गया, किन्तु नेहरू कम्युनिस्ट चीन को ही वह सीट देने पर अड़े रहे। यह उन्होंने स्वयं भारत आकर मुख्यमंत्रियों को लिखे पत्र में विस्तार से बताया! उसी वर्ष अपनी भारत यात्रा में सोवियत रूसी राष्ट्रपति बुल्गानिन ने भी भारत को सुरक्षा परिषद् की स्थाई सीट प्रस्तावित की, मगर नेहरू जी उन्हें भी मना कर दिया। ऐसे विचित्र, वामपंथी मतवादग्रस्त, ख्याली राजनीति में डूबे रहने के कारण ही नेहरू जी को लद्दाख में चीन की घुसपैठ की जानकारी भी बहुत बाद में हुई। नेहरू मानकर चल रहे थे कि चीन तो उनका अहसानमंद है! लेकिन राजनीति में ऐसे अज्ञान और आत्म-मुग्धता की भारी कीमत चुकानी पड़ती है। भारत में स्वतंत्रता-पूर्व से ही गाँधी और नेहरू के राजनीतिक अज्ञान की भयंकर कीमत जनता, विशेषतः हिन्दू जनता को चुकानी पड़ती रही है। (इस पर पर्दा डालने के लिए ही इस्लामी मतवाद या कम्युनिस्ट चीन को बहुत बलशाली बताया जाता है। वरना गाँधी, नेहरू की भयंकर गल्तियाँ खुल जाएँगी।)

बहरहाल, चीनी कम्युनिस्टों द्वारा 1951 में तिब्बत पर हमले और कब्जे के बाद विश्व-जनमत ने भारत की ओर ही देखा था। स्वयं नेहरू ने 27 नवंबर 1959 को लोक सभा में अपने भाषण में कहा कि संयुक्त राष्ट्र में लोग हमें ताना देते हैं कि भारत कैसा अंधा देश है जो तिब्बत और अपनी सीमा पर हरकतों के बावजूद उल्टे चीन की पैरवी कर रहा है! पर भारत द्वारा चीन का समर्थन करने से ही दुनिया चुप हो गई। वरना तब कम्युनिस्ट चीन कोई महाशक्ति तो क्या, मान्यताप्राप्त देश तक नहीं था! सन्

1971 तक संयुक्त राष्ट्र में फारमूसा (ताइवान) को मान्यता थी। चीन के साथ अमेरिका ने 1978 तक संबंध तक नहीं बनाए थे।

अत: यदि मामले का रुख बदलता, यानी भारत आवाज उठाता, तो यूरोप, अमेरिका, रूस, सभी चीन पर दबाव डालते कि वह तिब्बत में मनमानी न करे। लेकिन भारत ने यह आज तक नहीं किया। उल्टे नेहरू से लेकर वाजपेई तक की गई गल्तियों को छिपाने की चिन्ता में यहाँ की सरकारों ने अपने ही देशवासियों को ही प्रवंचना में सुलाने की नीति रखी।

मनोवैज्ञानिक दबाव से उबरना जरूरी-इस प्रकार, कम्युनिस्ट चीन के विरुद्ध जबरदस्त लोकतांत्रिक हैंडल हाथ में होने के बावजूद भारत ने उसका इस्तेमाल नहीं किया! तिब्बत की 'स्वायत्तता', जो कम्युनिस्ट चीन ने उसे देने का वायदा किया था, के विध्वंस से भारत की सुरक्षा के साथ-साथ सांस्कृतिक, पर्यावरणीय हितों को चोट पहुँची है। इस पर चुप्पी रख कर हम तिब्बत के साथ-साथ अपनी हानि भी बर्दाश्त करते रहे हैं। ऐसे देश का सम्मान विश्व में कभी नहीं होता जो अपनी हानि बर्दाश्त करता रहे!

यह हमारी सैन्य कमजोरी की बात नहीं है। दशकों से भारत और कम्युनिस्ट चीन के बीच मूलत: मनोवैज्ञानिक ऊँच-नीच का संबंध है। हमारे प्रति चीनी सत्ता के काम और बयान मुख्यत: दबाव डालने के लिए होते हैं। उसका उत्तर उन बयानों का आत्मविश्वासपूर्ण और सटीक बयान देना भर है। ताकि दूसरे पक्ष को मालूम हो कि हम धौंस में नहीं हैं। यह भंगिमा और इसे वास्तविक रूप देने की दृढ़ता हमें दिखानी चाहिए। केवल इसी से काम चल जाएगा। वस्तुत: जन-गण की दृष्टि से चीन और भारत के संबंध कभी दुश्मनी के नहीं रहे और आज भी नहीं हैं। यह केवल सत्ताधारियों की उठा-पटक है, जिसमें हमारे सत्ताधारी मात खाते रहे हैं।

जब-जब कम्युनिस्ट चीन हमें कूटनीतिक सुई चुभोता है-जैसे आणविक समूह में सदस्यता का विरोध करना या भारत विरुद्ध किसी जिहादी आतंकवादी का बचाव करना, तो हमें भी हर मौके पर हाँग-काँग, ताइवान के साथ सहानुभूति दिखानी चाहिए। चीन को उसी तरह नागरिक स्वतंत्रता का उपदेश देना चाहिए, जैसे वह हमें संयम का पाठ पढ़ाता है। बात का उत्तर बात, और सैनिक हरकत का उत्तर सैनिक तैनाती। बराबरी का व्यवहार ही चीन के साथ सही संबंध की कुंजी है।

अब तक हमने ऐसा नहीं किया है। चीनी कम्युनिस्ट तानाशाही की धौंस चुपचाप सुनी है। यह कूटनीति का सार्वभौमिक सत्य है कि जहाँ लड़ने की तैयारी हो वहीं शान्ति रहती है। कोई भी देश हर बात में युद्ध नहीं छेड़ देता। फिर, आक्रमण का उत्तर देने के लिए ही सेना होती है। मगर हर हाल मंक युद्ध से बचने की प्रवृत्ति अन्य हितों को चोट पहुँचाने के साथ-साथ अंतत: अधिक सैनिक हानि भी कराती है।

अत: चीन के साथ संबंध सुधारने का उपाय एक अर्थ में बहुत आसान है। आबादी, संसाधन, तकनीक और भौगोलिक क्षेत्र में भारत चीन से तुलनीय है। इसके अलावा हमारे पास नैतिक बल अतिरिक्त है कि हम चीन या चीनी जनता की हानि नहीं चाहते। केवल अपना अधिकार और सुरक्षा चाहते हैं। अपनी करनी, कथनी और भंगिमा से चीनी जन-गण को केवल यह जता देने की जरूरत है। तिब्बत की स्वायत्तता का वचन चीन पूरा करे, इसके लिए हर उपयुक्त अवसर पर आवाज उठाना और तिब्बतियों को

भी उठाने देना-यह सब कोई कठिन काम नहीं हैं।

कठिन है, हमें अपने चरित्र में गुलामी का दब्बूपन, अज्ञान और झूठे आडंबर छोड़ना। अपना जीवन-लोभी और पद-लोभी अंदाज बदलना। नकली विचारों, झूठे देवताओं और ख्याली आदर्शों का प्रचार कर, अपने को भरमाना बंद करना। अपने ही देश का शासन सचमुच अपने हाथ में लेना। शासन चलाने का ढोंग करते हुए केवल आरामपसंदगी। जिहाद, कश्मीर, पाकिस्तान या चीन, आदि मामलों में अमेरिका, संयुक्त राष्ट्र या यूरोप से भीख माँगना बंद करना। यही कठिन है। क्योंकि पिछले सात दशकों से नकली आदर्शों, झूठे विचारों और मनगढ़ंत नारों से हमने अपना ही माथा चकरा लिया है।

इसीलिए कोई सीधी, सच्ची बात हमें सही नहीं लगती। हम खाम-ख्याली विचारों, नारों को दुहराते रहते हैं। न उन विचारों की परख करते हैं, न परिणामों से सीखते हैं। हमारी विफलताएँ मूलतः काल्पनिक विचारों, अज्ञान, आत्म-मुग्धता और आत्म-प्रवंचना का परिणाम हैं। चीन और तिब्बत पर हमारी बाँझ नीतियाँ इसका सबसे ज्वलंत प्रमाण हैं।

यद्यपि भारत के पास सारे संसाधन हैं। कोई युद्ध नहीं होगा, बशर्ते कि आप युद्ध से बचने के लिए दयनीय लफ्फाजियाँ और चित्र-विचित्र करतब न करें। अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति काफी-कुछ भंगिमाओं से चलती है। चीनी कम्युनिस्ट सत्ता इसका सुंदर उदाहरण है। उस ने 1978-79 में वियतनाम पर हमले के बाद से अभी तक कोई लड़ाई नहीं लड़ी है। वियतनाम को 'सबक सिखाने' का प्रयास भी उसे महँगा पड़ा जब चीनी सत्ता को 50 हजार सैनिकों से हाथ धोना पड़ा। इसीलिए, अपने विमर्श में वे अमेरिकी, फ्रांसीसियों से लड़ाई का उल्लेख करते रहते हैं, मगर वियतनाम-युद्ध को याद नहीं करते! उस पर चुप्पी रखते हैं। हालिया दशकों में चीन ने रूस, जापान, कोरिया, फिलीपीन्स और अमेरिका से भी प्रायः भंगिमाओं से काम निकाला और व्यवहारिक समझौते किए हैं। अतः भारत को ही डरे रहने की जरूरत नहीं है।

इसलिए भी क्योंकि आज तक कम्युनिस्ट चीन ने 1962 में भारत पर पड़े हीन मनोवैज्ञानिक प्रभाव का ही जमकर दोहन किया है। इतना चीनी सत्ता के लिए भी साफ है कि भारत कोई वियतनाम से अधिक दुर्बल देश नहीं। इसीलिए वह भारत के विरुद्ध धौंस जमाने, अपमानित करने का कोई मौका नहीं जाने देती। बात-बेबात तंज कसना, चेतावनी, कभी-कभी सैनिक टुकड़ियों से सीमा पर अतिक्रमण करना, आदि इसके लटके हैं। ताकि हम बराबरी से व्यवहार करने की सोचें भी नहीं।

यही, और केवल इसी ग्रंथि से मुक्त होना हमारी जरूरत है। इसका उपाय सैन्य-बल नहीं, केवल हरेक अवसर का सही उपयोग करने की चतुराई और निर्भीक मनोबल रखने में है। अभी तक हमारे कर्णधारों ने तिब्बत पर शर्मनाक भूल, फिर संयुक्त राष्ट्र में की गई मूर्खता, और अंततः 1962 की ग्रंथियों के कारण चीनी कम्युनिस्टों की आक्रामक भंगिमाओं को अनावश्यक महत्व दिया। उनकी दुर्बलताओं का मूल्यांकन नहीं किया। चीन में लोकतंत्र की चाह, नागरिक अधिकारों का अभाव, अनेक पड़ोसी देशों से मनमुटाव और विश्व-व्यापार-यह सब चीन की भी चिंताएँ हैं। चीनी तानाशाह कोई सैन्य-सम्राट नहीं हैं जिनके प्रति सभी समर्पित हों। उल्टे, जिस भी देश ने चीन के प्रति अनम्य बराबरी का रुख लिया है, उसके प्रति चीन ने भी व्यावहारिक रुख रखा है। वियतनाम के अलावा रूस, जापान और फिलीपीन्स भी

इसके उदाहरण हैं।

गत पाँच दशकों में भारत ने सैन्य बल बढ़ाया, मगर अन्य महत्त्वपूर्ण कारकों को सुधारने पर नहीं सोचा। भारत और कम्युनिस्ट चीन के बीच अभी सबसे बड़ा उपयोज्य कारक विपरीत राजनीतिक व्यवस्थाएँ हैं। उन्होंने अपनी कम्युनिस्ट तानाशाही और साम्राज्यवादी मतवाद का भरपूर उपयोग किया। किन्तु भारत ने लोकतांत्रिक स्वतंत्रता और नागरिक अधिकारों का वही उपयोग नहीं किया। अन्यथा हमें चीन, तिब्बत, हाँग-काँग के नागरिक स्वातंत्र्य-प्रेमियों को भरपूर सहयोग, सम्मान और प्रचार दिया होता। भारत और चीन के बीच दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक तिब्बत है। सारी गड़बड़ी तिब्बत पर भारत द्वारा अपना कूटनीतिक अधिकार छोड़ देने से शुरू हुई है। हमें किसी न किसी प्रकार उसका मार्जन करना ही चाहिए।

चीन, हाँग-काँग या तिब्बत के स्वातंत्र्य-प्रेमियों को सम्मानित करने, उन्हें भौतिक-नैतिक-वैचारिक समर्थन देने के लिए हमें अपनी सरकार पर निर्भर रहने की कोई जरूरत नहीं है। हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक संगठन, आदि सभी यह स्वयं कर सकते हैं। इस प्रकार, हम विविध उपायों से तिब्बत की स्वायत्तता और भारत की सुरक्षा, सम्मान को बल पहुँचा सकते हैं। उससे हमारी सरकार को भी सहयोग मिलेगा।

यह सब कोई काल्पनिक नहीं, व्यावहारिक उपाय हैं। डर और संकोच छोड़कर ही राज्यकर्म होता है। कम से कम स्वामी विवेकानन्द को आदर्श मानने वालों को तो 'वीर-भोग्या वसुंधरा' याद रखना चाहिए! यदि भारत ने विगत दशकों से सैन्यबल पर विशाल खर्च उठाया है तो धमकियों से डरने की प्रवृत्ति छोड़नी ही चाहिए। यही प्रवृत्ति दुश्मनों को आकर्षित करती है! वरना क्या कारण है कि भारत के परमाणु हथियार और प्रक्षेपास्त्रों से सज्जित होने ने बाद भी पाकिस्तान या चीन हमें सुई चुभोने या अपमानित करने से नहीं हिचकते? साफ है, मुख्य ताकत हथियारों में नहीं, कहीं और होती है।

वस्तुतः भारत-चीन के बीच संबंध में तो असली क्षेत्र वैचारिक, बौद्धिक है, जहाँ भारत भोला-भाला, अज्ञानी-गाँधीवादी व्यवहार करता रहा है। जिस दिन भारत ने चीन की कथनी-करनी पर विश्वासपूर्ण, खुशमिजाज, चुटीली टिप्पणियाँ करना भी सीख लिया, उसी दिन से भारत और चीन के बीच अधिक संयत संबंध बनने शुरू हो जाएँगे। निर्भीकता, वाक्पटुता और सद्भाव एक साथ दिखें, इसी में भारत की सफल चीन-नीति की कुंजी है।

भारत शान्ति चाहता है, यह सच है। गलत यह है कि केवल शान्ति की चाह रखने से शान्ति मिलती। शान्ति केवल हरेक अन्याय, अपमान को दृढ़ता-पूर्वक अस्वीकार करने और इसके लिए अपने को दाँव पर लगाने पर निर्भर है। यही सोल्झेनित्सिन जैसे महानतम योद्धा-लेखक-दार्शनिक ने पचास सालों के अपने अवलोकन, अनुभव और चिंतन-मनन से कहा था। हमें उनकी चेतावनी से सीखना चाहिए।

2/18, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली - 110002
मो. - 9910035650

लद्दाख में चीन का हस्तक्षेप और मोदी की नीति

- रामदेव भारद्वाज



जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर से वर्ष 1980 में राजनीति विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण एवं अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से 1985 में एम. फिल. एवं रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय से 1992 में पीएच.डी। वर्तमान में आप अटल बिहारी हिंदी विश्वविद्यालय के कुलपति है।

कोरोना वायरस, कोविड-19 महामारी के बीच भारत के साथ चीन का सीमा विवाद काफी नाजुक मोड़ में पहुँचने के बाद तत्काल युद्ध की संभावनाएँ निरस्त जरूर हो गई हैं। लेकिन सीमाएँ पूरी तरह तनाव मुक्त नहीं हुई हैं। भारत और चीन के हजारों सैनिक आमने-सामने हैं। दोनों ही देश सीमा पर टैंक, तोपें और गोला-बारूद जमा कर रहे हैं। भारत और चीन सीमा पर विगत एक माह से तनाव चल रहा है। पूर्वी लद्दाख पर अपनी सीमा के भीतर अपनी तरफ 30 किमी. की दूरी पर चीन लगातार भारी संख्या में सैनिकों और तोपों की तैनाती बढ़ाता जा रहा है। भारत ने भी चीन को जवाब देने के लिए अपनी पूरी तैयारी कर ली और लद्दाख की वास्तविक नियंत्रण रेखा सीमा पर भारतीय सेना ने बड़ी मात्रा में हथियार भी पहुँचा दिए हैं। पूर्वी लद्दाख की सीमा में अपनी सैन्य शक्ति में इजाफा कर चीन दोहरा चरित्र दिखा रहा है।

विश्व के राष्ट्रों और अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञों का मानना है कि कोरोना संकट को लेकर हो रही चीन की आलोचना से बचने के लिए चीन ने राष्ट्रवाद और संप्रभुता को हथियार बनाया है। विशेषज्ञों ने चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग को चेतावनी दी है कि भारत के साथ तनाव बढ़ाने से उल्टा चीन को ही नुकसान होगा। आलेख का केंद्रीय विषय चीन के चरित्र को उजागर करना है जो मूलत: अविश्वसनीय है।

चीन के इरादे क्या हैं? अभी तत्काल में चीन का लद्दाख इलाके में दखलंदाजी का क्या मतलब है? पैंगोंग त्सो झील जहाँ अभी तनाव है, उसका भौगोलिक और रणनीतिक महत्व क्या है? चीनी आक्रामकता के क्या कारण हैं? लद्दाख में प्रधानमंत्री मोदी ने क्या नीति अपनाई है और चीन क्या चाहता है? इन विषयों की विवेचना करने का एक विनम्र प्रयास किया गया है।

चीन का चरित्र : चीन का चरित्र मूलत: अविश्वसनीय है, संदेहास्पद, भ्रामक और कपटपूर्ण है। चीन कूटनीति का चतुर खिलाड़ी है। चीन जो दिखता है वह नहीं है और जो है वह दिखता नहीं है। चीनी राजनय विश्व के प्राचीनतम राजनयों में एक है। वह अपने शत्रु से भी शत्रुता प्रदर्शित नहीं करता। चीन में एक प्राचीन राजनयिक सूक्ति है, अगर आप किसी को धोखा देना चाहते हो तो पहले उसको अपना मित्र बनाओ, उसका विश्वास जीतो, उससे पूरा-पूरा

लाभ लो और फिर घात करो, धोखा दो, उसे कलंकित और बदनाम करो। आज चीन की नीतियों और इसके व्यवहार अर्थात् वैश्विक संबंधों में चीन का मौलिक चरित्र चरितार्थ होता हुआ नजर आ रहा है। चीन का विवादों के साथ गहरा अन्योन्याश्रित संबंध है। इतिहास साक्षी है कि जहाँ चीन की उपस्थिति है और विवाद न हो ऐसा संभव नहीं। चीन अपनी विस्तारवादी नीति के कारण सदैव ही विवादों में रहा है। चीन की भौगोलिक सीमाएँ 14 पड़ोसी देशों के साथ लगभग 22 हजार किलोमीटर तक लगती हैं, परंतु आश्चर्यजनक तो यह है चीन का इन सभी 14 देशों के साथ सीमा विवाद रहा है। चीन का इन पड़ोसी राष्ट्रों में युद्ध का भय दिखता है। चीन का 23 देशों के साथ विवाद चल रहा है। यद्यपि चीन ने अपने 13 पड़ोसी देशों के साथ सीमा विवाद सुलझा लिया है, परंतु भारत के साथ चीन का सीमा विवाद अभी भी है।

लद्दाख में चीन : भारत-चीन सीमा विवाद को गहराई से समझने के लिए लद्दाख की भू-सामरिक स्थित को जानना जरूरी है। लद्दाख़ जो ऊँचे दर्रों की भूमि के नाम से जाना जाता है। भारत का एक केंद्रशासित प्रदेश है। यह उत्तर में काराकोरम पर्वत और दक्षिण में हिमालय पर्वत के बीच में है। यह भारत के सबसे विरल जनसंख्या वाले भागों में से एक है। भारत अक्साई चीन को भी इसका भाग मानता है, जो वर्तमान में चीन के कब्ज़े में है। सन् 1909 के लद्दाख तहसील रेवेन्यू मैप और चीन के सन् 1893 के आधिकारिक नक्शे से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अक्साई चीन, लद्दाख का हिस्सा था। एलएसी पर गलवान नदी घाटी जहाँ पर इस समय चीन के सैनिक मौजूद हैं, वह भी इन नक्शों में लद्दाख का हिस्सा नजर आ रहा है। हैरानी की बात है कि चीन का शासकीय अखबार ग्लोबल टाइम्स अपने एक आर्टिकल में लिखता है कि गलवान घाटी डोकलाम नहीं है और यह अक्साई चीन का हिस्सा है, जो शिनजियांग प्रांत में आता है।

ग्लोबल टाइम्स भले ही अक्साई चीन को चीन का हिस्सा बता रहा है, पर वह भारत का हिस्सा है। लेकिन सन् 1950 में चीन ने इस पर नियंत्रण कर लिया और अब वह एलएसी की स्थिति को बदलने की कोशिशों में लगा हुआ है। इतिहासकारों के मुताबिक सन् 1865 में भारत-चीन सीमा का ब्रिटिश सर्वेयर विलियम जॉन्सन ने सर्वे किया और जॉनसन लाइन के हिसाब से बताया कि अक्साई चीन जम्मू-कश्मीर का हिस्सा है। इसके बाद 1899 में एक और ब्रिटिश सर्वेयर ने अक्साई चीन को मैकार्ने मैकडोनल्ड लाइन के हिसाब से अक्साई चीन को चीन का हिस्सा बताया। 1947 में भारत विभाजन के समय डोगरा राजा हरिसिंह ने जम्मू कश्मीर को भारत में विलय की मंज़ूरी दे दी। पाकिस्तानी घुसपैठिए लद्दाख पहुँचे और उन्हें भगाने के लिए सैनिक अभियान चलाना पड़ा। युद्ध के समय सेना ने सोनमर्ग से जोजीला दर्रा पर टैंकों की सहायता से कब्जा किए रखा। सेना आगे बढ़ी और द्रास, कारगिल व लद्दाख को घुसपैठियों से आजाद करा लिया गया।

1949 में चीन ने नुब्रा घाटी और जिनजिआंग के बीच प्राचीन व्यापार मार्ग को बंद कर दिया। 1955 में चीन ने जिनजिआंग व तिब्बत को जोड़ने के लिए इस इलाके में सड़क बनानी शुरू की। उसने पाकिस्तान से जुड़ने के लिए काराकोरम हाईवे भी बनाया। भारत ने भी

इसी दौरान श्रीनगर-लेह सड़क बनाई जिससे श्रीनगर और लेह के बीच की दूरी सोलह दिनों से घटकर दो दिन रह गई। हालाँकि यह सड़क जाड़ों में भारी हिमपात के कारण बंद रहती है। वर्ष 1984 से लद्दाख के उत्तर-पूर्व सिरे पर स्थित सियाचिन ग्लेशियर भारत और पाकिस्तान के बीच विवाद की एक और वजह बन गया। यह विश्व का सबसे ऊँचा युद्धक्षेत्र है। यहाँ 1972 में हुए शिमला समझौते में पॉइण्ट 9842 से आगे सीमा निर्धारित नहीं की गई थी। यहाँ दोनों देशों में साल्टोरो रिज पर कब्जा करने की होड़ रहती है। कुछ सामरिक महत्व के स्थानों पर दोनों देशों ने नियंत्रण कर रखा है, फिर भी भारत इस मामले में फायदे में है।

1979 में लद्दाख को कारगिल व लेह जिलों में बाँटा गया। 1989 में बौद्धों और मुसलमानों के बीच दंगे हुए। कारगिल युद्ध (1999) के समय इसे भारतीय सेना द्वारा ऑपरेशन विजय का नाम दिया गया। इसकी वजह पश्चिमी लद्दाख मुख्यत: कारगिल, द्रास, मश्कोह घाटी, बटालिक और चोरबाटला में पाकिस्तानी सेना की घुसपैठ थी। इससे श्रीनगर-लेह मार्ग की सारी गतिविधियाँ उनके नियंत्रण में हो गईं। भारतीय सेना ने आर्टिलरी और वायुसेना के सहयोग से पाकिस्तानी सेना को लाइन ऑफ कंट्रोल के उस तरफ खदेड़ने के लिए व्यापक अभियान चलाया। 1990 के ही दशक में लद्दाख को कश्मीरी शासन से छुटकारे के लिए लद्दाख ऑटोनॉमस हिल डेवलपमेंट काउंसिल का गठन हुआ और अंतत: 5 अगस्त 2019 को यह भारत का नौवाँ केंद्र शासित बन गया।

तात्कालिक घटनाक्रम : चीनी सैनिकों ने वास्तविक नियंत्रण रेखा (एल.ए.सी) पर तीन स्थानों को पार किया है। इनमें से प्रत्येक स्थान पर लगभग 2500 चीनी सैनिक मौजूद हैं। चीनी सेना ने पिछले दो सप्ताह में 100 से ज्यादा तंबू गाड़कर अपनी स्थिति को मजबूत किया है। बंकर बनाने वाली मशीनों को भी लाना चालू कर दिया है। 5 मई 2020 को पूर्वी लद्दाख में पैंगोंग लेक के नजदीक भारतीय और चीनी सैनिकों में संघर्ष हुआ। इस दौरान चीन के तकरीबन 250 सैनिक, भारतीय जवानों के साथ भिड़ गए थे। इस भिड़ंत में दोनों देशों के लगभग 100 सैनिक घायल हो गए थे।

पैंगोंग त्सो का भौगोलिक/ रणनीतिक महत्व : लद्दाखी भाषा में पैंगोंग का अर्थ है समीपता और तिब्बती भाषा में त्सो का अर्थ है झील। पैंगोंग त्सो लद्दाख हिमालय में 14,000 फुट से अधिक की ऊँचाई पर स्थित एक लंबी, सँकरी, गहरी, एंडोर्फिक (लैंडलॉक) झील है। पैंगोंग त्सो का पश्चिमी छोर लेह के दक्षिण-पूर्व में 54 किमी. दूर स्थित है और 135 किमी. लंबी यह झील बुमेरांग के आकार में 604 वर्ग किमी. में फैली हुई है और अपने सबसे विस्तारित बिंदु पर यह 6 किमी. चौड़ी है। खारे पानी की यह झील शीतऋतु में जम जाती है, यह आइस स्केटिंग और पोलो के लिए एक उत्तम स्थान है। इसका जल खारा होने के कारण इसमें मछली या अन्य कोई जलीय जीव नहीं हैं, परंतु यह कई प्रवासी पक्षियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रजनन स्थल है। इस झील का 45 किलोमीटर क्षेत्र भारत में स्थित है, जबकि 90 किलोमीटर क्षेत्र चीन में पड़ता है। वास्तविक नियंत्रण रेखा इस झील के मध्य से गुजरती है। 19वीं शताब्दी के मध्य में यह झील जॉनसन

रेखा के दक्षिणी छोर पर थी। जॉनसन रेखा अक्साई चीन क्षेत्र में भारत और चीन के बीच सीमा निर्धारण का एक प्रारंभिक प्रयास था।

एल.ए.सी. रेखा, पैंगोंग त्सो झील के मध्य से होकर गुजरती है, लेकिन भारत और चीन इसकी सटीक स्थिति के विषय में सहमत नहीं हैं। इस झील का 45 किमी. लंबा पश्चिमी भाग भारतीय नियंत्रण में, जबकि शेष चीन के नियंत्रण में है। भारत-चीन की सेनाओं के बीच अधिकांश झड़पें झील के विवादित हिस्से में होती हैं। पैंगोंग त्सो झील चुशूल घाटी के मार्ग में आती है, यह एक मुख्य मार्ग है जिसका चीन द्वारा भारतीय-अधिकृत क्षेत्र में आक्रमण के लिए उपयोग किया जा सकता है। भारत-चीन 1962 के युद्ध के दौरान यही वह स्थान था जहाँ से चीन ने अपना मुख्य आक्रमण शुरू किया था, भारतीय सेना ने चुशूल घाटी के दक्षिण-पूर्वी छोर के पहाड़ी दर्रे रेडांग ला से वीरतापूर्वक युद्ध लड़ा था।

चुशूल घाटी फिंगर क्षेत्र में झड़पें : चुशूल घाटी यह केंद्रशासित प्रदेश लद्दाख क्षेत्र में चुशूल घाटी के दक्षिण-पूर्व में स्थित एक पहाड़ी दर्रा है। इसकी लंबाई लगभग 2.7 किमी., चौड़ाई 1.8 किमी. और ऊँचाई 16000 फुट है। वर्ष 1962 के भारत-चीन युद्ध में रेज़ांग ला कुमाऊं रेजिमेंट के 13 कुमाऊं दस्ते का अंतिम मोर्चा था। इस दस्ते का नेतृत्व मेजर शैतान सिंह ने किया था। इस युद्ध को 'रेज़ांग ला का युद्ध' नाम से जाना जाता है। पिछले कुछ वर्षों में चीनियों ने पैंगोंग त्सो के अपनी ओर के किनारों पर सड़कों का निर्माण भी किया है। चीन के निंग्जिया हुई स्वायत्त क्षेत्र की राजधानी यिनचुआन के दक्षिण-पश्चिम में मिनिंगज़ेन में पी.एल.ए. के हुआंगयांगटन बेस में अक्साई चीन (भारत और चीन के मध्य विवादित क्षेत्र) में इस विवादित क्षेत्र का एक दो-स्तरीय मॉडल भी मौजूद है। यह चीन के लिए इस क्षेत्र के महत्त्व को स्पष्ट रूप से इंगित करता है। चुशूल घाटी, चुशूल केंद्रशासित प्रदेश लद्दाख के लेह जिले में समुद्र तल से 4,300 मीटर या 15,000 फीट की ऊँचाई पर स्थित एक गाँव है। यह चुशूल घाटी में अवस्थित है। चुशूल घाटी रेज़ांग ला (दर्रा) और पैंगोंग त्सो (झील) के पास स्थित है।

पैंगोंग लेक के उत्तरी किनारे को सेना फिंगर्स के नाम से पुकारती है क्योंकि यह हथेली जैसा आकार लिए हुए है और 8 हिस्सों में बँटी है। भारत कहता है कि 8वीं फिंगर से एल.ए. सी. की शुरुआत होती है जबकि इसका विरोध करते हुए इसे दूसरी फिंगर से शुरू होना बताता है। भारत का नियंत्रण चौथी फिंगर तक है। इस बार गलवान में हुई घुसपैठ भारत के लिए नई घटना थी। चीन की क्लेम लाइन यहीं से गुजरती है और यहीं पर ड्रैगन सैनिक मौजूद हैं। चीन के प्रतिउत्तर में भारत ने भी विगत चार वर्षों के दौरान पूरे एल.ए.सी. पर रोड और लैंडिंग स्ट्रिप बिछाने का काम तेजी से किया है। यहाँ चीन की लगातार पैट्रोलिंग का भी भारत ने तेज विरोध शुरू कर दिया है और झड़पें बढ़ गई हैं।

क्षेत्र में विवाद : वर्ष 1999 में जब ऑपरेशन विजय के लिए इस क्षेत्र से सेना की टुकड़ी को कारगिल के लिए रवाना किया गया, तो चीन को भारतीय क्षेत्र के अंदर 5 किमी. तक सड़क बनाने का अवसर मिल गया। यह स्पष्ट रूप से चीन की आक्रामकता को इंगित करता है। वर्ष 1999 में चीन द्वारा निर्मित सड़क

इस क्षेत्र को चीन के व्यापक सड़क नेटवर्क से जोड़ती है, यह जी 219 काराकोरम राजमार्ग से भी जुड़ती है। इन सड़कों के माध्यम से चीन की स्थिति भौगोलिक रूप से पैंगोंग झील के उत्तरी सिरे पर स्थित भारतीय स्थानों की अपेक्षा अधिक मजबूत बनी हुई है। झील के उत्तरी किनारे पर उपस्थित पहाड़ यहाँ एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं, जिसे सेना फिंगर्स के नाम से संबोधित करती है। भारत का दावा है कि एल.ए.सी. फिंगर 8 से जुड़ी है।

चीनी आक्रामकता के कारण : जल शक्ति के संदर्भ में कुछ वर्ष पहले तक इस क्षेत्र में चीन की स्थिति अधिक मजबूत थी, लेकिन अब भारत ने बेहतर गति एवं तकनीक वाली नौकाएँ खरीदी हैं, ताकि इस क्षेत्र में अधिक तेजी से आक्रामक प्रतिक्रिया की जा सके। यद्यपि दोनों ओर से गश्ती नौकाओं के विस्थापन के लिए बेहतर ड्रिल की व्यवस्था मौजूद है। सामान्यतौर पर जब दो गश्ती दल आमने-सामने आते हैं तो एक बैनर ड्रिल का प्रदर्शन करते हैं जिसमें एक बैनर प्रदर्शित करते हुए दूसरे पक्ष से अपना क्षेत्र खाली करने के लिए कहा जाता है। परंतु पिछले कुछ वर्षों में जल के मुद्दों पर टकराव के कारण भी तनाव की स्थिति उत्पन्न हुई है। उच्च गति वाली नौकाओं के शामिल होने से स्पष्ट रूप से चीनियों के व्यवहार में अधिक आक्रामकता आई है, जिसके चलते पिछले कुछ वर्षों में इस क्षेत्र में अधिक तनाव की स्थिति देखने को मिली है।

चीन ने लद्दाख के पास नगारी कुंशा एयरपोर्ट पर पैंगोंग लेक से करीब 200 किलोमीटर की दूरी पर तिब्बत में स्थित एक एयरबेस का निर्माण किया है। चीन के प्रमुख लड़ाकू विमान भारतीय सीमा से केवल 200 किलोमीटर दूर तैनात, वाकई भारत के लिए चिंता का विषय है। पैंगोंग त्सो और गलवान घाटी में भारत की स्थिति मजबूत है। इन दोनों विवादित क्षेत्रों में चीनी सेना ने अपने दो से ढाई हजार सैनिकों की तैनाती की है और वह धीरे-धीरे अस्थायी निर्माण को मजबूत कर रही है। कई क्षेत्रों में भारतीय और चीनी सैनिकों के बीच तनाव की स्थिति बरकरार है। दोनों देशों के सैनिकों के बीच 2017 में डोकलाम में 73 दिन तक गतिरोध चला था। भारत और चीन के बीच 3,488 किलोमीटर लंबी एलएसी पर विवाद है। चीन अरुणाचल प्रदेश पर दावा करता है और इसे दक्षिणी तिब्बत का हिस्सा बताता है। जबकि भारत का कहना है कि यह उसका अभिन्न अंग है। चीन, जम्मू कश्मीर का पुनर्गठन किए जाने और लद्दाख को केंद्रशासित प्रदेश बनाने के भारत के कदम की निंदा करता रहा है। लद्दाख के कई हिस्सों पर बीजिंग अपना दावा जताता है।

लद्दाख में मोदी की नीति : लद्दाख में प्रधानमंत्री मोदी ने आक्रामक नीति का परिचय दिया है, परिणामस्वरूप चीन भारत के रुख से बेहद परेशान है। जब लद्दाख और सिक्किम में चीनी सैनिकों ने आक्रामक रवैया अपनाया तो प्रतिउत्तर में इस बार भारत ने भी वास्तविक नियंत्रण रेखा पर अधोसंरचना निर्माण कार्य को गति दी है। भारत ने गलवान घाटी तक सड़क निर्माण कर लिया है। लद्दाख में निर्मित दारबुक-श्योक-दौलत बेग ओल्डी रोड मैदानी इलाका देपसांग और गलवान घाटी तक पहुँचता है। इसे सीमा सड़क संगठन ने बनाया है। बीआरओ भारत सरकार की वह एजेंसी है जो अपने देश

के साथ-साथ पड़ोसी मित्र देशों के सीमाई इलाकों में रोड नेटवर्क तैयार करती है। इसी संगठन ने ठीक एक वर्ष पहले दारबुक-श्योक-दौलत बेग ओल्डी रोड का काम पूरा कर दिया।

इन परिस्थितियों में सड़क बनाना कोई आसान काम नहीं है। यहाँ कई नदियाँ और नाले हैं। लद्दाख में श्योक आखिरी इलाका है जहाँ बस्ती बसी है। इस सड़क का टर्मिनल पॉइंट दौलत बेग ओल्डी काराकोरम दर्रे से नजदीक 16,750 फुट ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ न्यूनतम तापमान माइनस 55 डिग्री तक चला जाता है। यहाँ संपर्क मार्ग बनाने के लिए 37 पुलों का निर्माण करना पड़ा। श्योक नदी पर बना एक पुल 1,400 फुट का है। इसके लिए माइक्रो पाइलिंग टेक्नॉलाजी के इस्तेमाल से पुल की नींव तैयार की गई। गर्व की बात यह है कि बीआरओ ने इस सड़क का निर्माण 14 महीने के रेकॉर्ड टाइम में पूरा कर दिया। दारबुक-श्योक-दौलत बेग ओल्डी रोड का काम तेज रफ्तार से पूरा करने के लिए सॉइल स्टेबलाइजेशन मैथड को सफलतापूर्वक लागू किया गया। अब यह सड़क दौलत बेग ओल्डी तक पूरी तरह जुड़ चुकी है।

मोदी नीति से परेशान चीन : गलवान घाटी तक सड़क निर्माण के कारण चीन आग बबूला हुआ है तथा चीन ने लगातार आंक्रामक रुख अपनाया हुआ है। क्योंकि सड़क निर्माण के कारण चीन को इस इलाके में अब खुली छूट नहीं मिल पाएगी। दौलत बेग ओल्डी में अब भारतीय वायुसेना का सी-130 जे मीडियम एयरलिफ्ट एयरक्राफ्ट भी उतर सकता है। चीन की बौखलाहट का एक और कारण है कि मोदी सरकार के कार्यक्रम में भारत बॉर्डर एरियाज में इन्फ्रास्ट्रक्चर तैयार करने के अभियान को आगे बढ़ाते हुए 3,346 किमी. लंबा 61 भारत-चीन बॉर्डर रोड बना रहा है। इस सड़क का महज 40 किमी. का हिस्सा ही बनाना रह गया है। अप्रैल 2018 में इस इलाके में सिर्फ 28 सड़कें ही थीं लेकिन हाल के दिनों में इस तरफ सरकार का विशेष ध्यान केंद्रित होने के कारण 2019 में 5 सड़कें बनकर पूरी हो गईं जबकि इस वर्ष 11 और सड़कों का निर्माण कार्य जारी है।

योजना के मुताबिक, 2021 में नई 9 सड़कें और मार्च 2022 में 6 और नई सड़कों का निर्माण हो जाएगा। बॉर्डर एरियाज में इन्फ्रास्ट्रक्चर तैयार करने को लेकर केंद्र सरकार की गंभीरता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 2009 से 2014-15 तक बीआरओ को करीब 4 हजार करोड़ रुपए का बजट मिलता रहा जो पिछले कुछ वर्षों से लगातार बढ़ने लगा है। 2018 में बीआरओ को 5,400 करोड़ रुपए और 2019-10 में 8 हजार करोड़ रुपए का बजट मिला और उम्मीद की जा रही है कि 2020-21 में उसे 10 हजार करोड़ रुपए का बजट मिलेगा। साथ ही, कैपिटल फंड में भी वृद्धि हुई है। बीआरओ बेहद दुरूह इलाकों और विपरीत मौसमी परिस्थितियों में बेहद समर्पण भाव से काम कर रहा है। वह सशस्त्र बलों, राज्य सरकारों, भारत सरकार और सीमाई इलाकों के निवासियों की उम्मीदों पर पूरी तरह खरा उतर रहा है।

लद्दाख में कई मुद्दों को लेकर भारत ने चीन को समुचित उत्तर देने की तैयारी की है।

लाइन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल पर चीन को उसी की भाषा में जवाब देते हुए भारतीय सेना को तंबू लगाकर तैनात कर दिया गया है। इससे एल.ए.सी.पर तनाव बढ़ा हुआ नजर आ रहा है। इससे पहले चीन ने पैंगोंग झील के पास टेंट लगाए थे, जिसके बाद भारत ने भी यहाँ सैन्य गतिविधियाँ बढ़ा दी हैं। मोदी सरकार दृढ़ संकल्पित है कि वह सीमा पर अपनी विकास गतिविधियों को नहीं रोकेगा। वस्तुस्थिति यह है कि लद्दाख में गलवान नामक एक घाटी है। इसको लेकर चीन आक्रामक है क्योंकि इसके नजदीक भारत के कई रक्षा संबंधी प्रोजेक्ट्स मौजूद हैं। यहाँ धारचुक से श्योक के जरिये दौलत बेग ओल्डी के लिए सड़क बनी हुई है और दौलत बेग ओल्डी में एंडवास्ड लैंडिंग ग्राउंड बना हुआ है।

यह दुनिया की सबसे ऊँचाई पर मौजूद हवाई पट्टी है। इस हवाई पट्टी पर इंडी सी-130 ग्लोबमास्टर एयरक्राफ्ट तक को लैंड किया जा सकता है। इसकी वजह से यह स्थान रणनीतिक रूप से भारत के लिए यह बेहद अहम है। इतना ही नहीं यह सड़क भारत को काराकोरम हाईवे से भी जोड़ती है और चीन को इसे लेकर भी परेशानी है। यह सड़क वर्ष 2019 में पूरी बन चुकी है। एल.ए.सी. पर बढ़ते तनाव की स्थिति की समीक्षा करने के लिए उत्तरी सेना के कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल वाई के जोशी मंगलवार को लद्दाख गए। तनाव के कारण भारतीय सेना ने क्षेत्र में दो अतिरिक्त डिवीजन स्ट्रेंथ स्थानांतरित कर दिया है।

सैनिकों ने अपने एक्लेमेटाइजेशन की प्रक्रिया को पूरा कर लिया है और गालवान घाटी, बड़ा हॉट स्प्रिंग एरिया और पैंगोंग झील के फिंगर एरिया के साथ चीनी बिल्ड-अप का मुकाबला करने के लिए तैनात कर दिए गए हैं। जबकि लद्दाख की देखरेख करने वाले सेना प्रभाग 14 कोर के पास पहले से पर्याप्त टैंक और हथियारों के भंडार हैं। भारतीय वायुसेना ने भी लद्दाख में सुखोई और मिराज के साथ अपनी उड़ान बढ़ा दी है, क्योंकि चीन ने अपनी तरफ से उड़ान बढ़ा दी है। इसे मिरर डिप्लॉयमेंट कहते हैं, बराबरी का दमखम।

चीन चाहता है कि भारत अपने क्षेत्रों में इन्फ्रास्ट्रक्चर का काम बंद करे। विवाद की वजह ये हैं कि चीनी सैनिक कई बार भारतीय सीमा में घुस आते हैं। हमारे सैनिकों से इनकी हाथापाई होती है। भारत ने सेना की रिजर्व डिवीजन को लद्दाख में तैनात कर दिया है। ये वे सैनिक हैं जिन्हें ऊँचाई या पहाड़ी इलाकों में जंग की महारत हासिल है। शुरुआत में कोरोना महामारी की वजह से कुछ दिक्कतें थीं लेकिन अब एयरक्राफ्ट्स और सड़क के जरिए फौज भेज दी गई है। सूत्रों ने ये भी साफ कर दिया कि भारत शांति तो चाहता है लेकिन अपनी सीमा में किसी की दखलंदाजी कतई बर्दाश्त नहीं की जाएगी।

कुलपति,
अटल बिहारी वाजपेयी,
हिन्दी विश्वविद्यालय,
भोपाल-462042 (म.प्र.)

कम्युनिस्ट उपनिवेशवाद से चीन की मुक्ति में भारत की भूमिका

- कुसुमलता केडिया



स्वदेशी अर्थचेतना की संवाहक।

जन्म - 2 जुलाई 1954।

जन्म स्थान - पडरौना (उ.प्र.)।

शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।

रचनाएँ - अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

चीन शब्द 'मिसनॉमर' है। स्वयं वहाँ के लोग अपने देश को आज भी चीन नहीं कहते, झुआंग हुओ, झांग हो या झुआंगुओ ही कहते हैं। 'झांग हो' या 'झुआंग हुओ' के लिये 'चीन' नाम का प्रयोग यूरोप और अमेरिका के लोगों ने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही पहली बार शुरू किया। उसके पहले वे उसे कैथे कहते थे और उससे भी पहले वे उस संपूर्ण क्षेत्र को 'इंडी' ही कहते थे। केवल भारत में प्राचीन काल से उसके लिये चीन शब्द का प्रयोग होता रहा है और जब अंग्रेज भारत में कुछ समय रह लिये और यहाँ के ग्रंथों से परिचित हो गये, तब वे भी 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से उसे चीन ही कहने लगे। जबकि 5100 वर्ष पूर्व महाभारत में चीन को भारत का ही एक जनपद कहा गया है **(महाभारत में भीष्म पर्व के अंतर्गत जम्बूखंड विनिर्माण पर्व, अध्याय 9)**। अर्जुन अपनी दिग्विजय यात्रा में भारत के सीमांत के इन जनपदों चीन और उत्तर कुरू तक गये थे **(महाभारत में सभापर्व के अंतर्गत दिग्विजय पर्व, अध्याय 26 एवं 27)**।

यूरोप के लोगों ने 19वीं शताब्दी के बाद से चीन के विषय में बहुत सी अतिरंजना मिश्रित कथायें रची हैं जो 'एब्सर्ड' और बेहूदी हैं। वे सभी कहानियाँ राजनैतिक प्रयोजनों से रची गई हैं। जबकि तथ्य यह है कि चीन प्रशांत महासागर से सटा और पीली नदी की घाटियों में फैला छोटा सा राज्य ही था।

सुदीर्घ काल तक झुआंगुओ (चीन) मूलतः प्रशान्त महासागर के तट पर हेनांग और जांग सू, झे झियांग, फूजांग, गुआंग डांग, शान डांग, सांगसी और हेबेल इलाके तक ही सीमित रहा। आज जो चीन का पश्चिमी भाग कहा जाता है, वह उनके इतिहास में शताब्दियों तक दूरस्थ और दुर्गम, पराया देश माना जाता था। अपने को मूल चीनी कहने वाले हान् लोग इसे बहुत दूर का देश कहते थे। **(चाइनाज जाग्रफी, ग्रेगरी वीक एवं अन्य द्वारा संपादित, रोमन एंड लिटिल फील्ड पब्लिशर, न्यूयार्क, अध्याय दो)**

पश्चिमी और दक्षिण पश्चिमी सभी इलाके दूसरे महायुद्ध के बाद ही 20वीं शताब्दी ईस्वी के मध्य में झुआंगुओं से जोड़े गये और कम्युनिस्ट पार्टी के कब्जे में दे दिये गए, जिसमें स्तालिन की मुख्य भूमिका रही। इन इलाकों के मूल निवासियों के साथ हान् लोगों का रक्तरंजित संघर्ष चलता रहता है। इन इलाकों में परिवहन भी अत्यन्त कठिन है और भरपूर खनिज संपदा वाले इन इलाकों के लोग अभी तक कथित मूल चीनियों से आत्मीयता विकसित नहीं कर सके हैं।

झुआंगुओ (चीन) का कुल 2200 वर्षों का ही इतिहास प्रामाणिक रूप से मिलता है।

आज भी इसके अनेक इलाकों में इतिहास संबंधी कोई भी पुरातात्विक अभिलेख प्राप्त नहीं हुये हैं। यह तो सर्वविदित है कि कोई एक मूल चीनी या झुआंग हुआ समूह नहीं है। जिन्हें हान् कहा जाता है, स्वयं उनमें सैकड़ों समूह समाहित हैं।

उत्तरी चीन में बड़ा इलाका मैदानी है और सबसे सघन आबादी भी वहीं है। परन्तु यह इलाका शताब्दियों तक दलदली रहा है। शान डांग का इलाका एक अलग द्वीप की तरह था। संपूर्ण झुआंगुओ क्षेत्र के हर इलाके की अलग-अलग सभ्यता रही है। कम्युनिस्ट चीन ने चीन का इतिहास लिखाने का एक बड़ा अभियान चलाया परन्तु वह सब दंत कथाओं पर आधारित था और उसके समर्थन में कोई भी साक्ष्य या अभिलेख उपस्थित नहीं है। वांग हे नदी के आसपास प्राचीन काल की कुछ इमारतें मिलीं। उनके ही आधार पर ईसा पूर्व किसी शिया वंश के होने की बात अनुमान के आधार पर कही गई। परन्तु उसके समर्थन में कोई भी साहित्य सुलभ नहीं है। जैसा कि चाईनाज जाग्रफी के अध्याय 3 में लिखा गया है - 'शिया वंश एक दंतकथा मात्र है और उसके शासन या उसकी सीमाओं के विषय में कोई भी जानकारी सुलभ नहीं है। पुरातात्विक अभिलेख केवल शंग-वंश के ही मिले हैं।' जिसका साम्य भारतीय सम्राट पुष्यमित्र शुंग से है। चीन में मिला तथाकथित साक्ष्य वस्तुत: हड्डियों में उत्कीर्ण कतिपय संकेतों के रूप में है। कछुये की खोपड़ी की खाल और हड्डियों में उत्कीर्ण इन चिन्हों को कम्युनिस्ट चीन ने रहस्यमय और दिव्य प्रचारित किया है और उसी को अपने द्वारा लिखवाये गये इतिहास का आधार बनाया है।

यह शंग-वंश उत्तरी हेनान का शासक था। अन्य क्षेत्रों में उसी से मिलते-जुलते कुछ साक्ष्य मिले हैं जिन्हें चीनियों ने शंग-वंश से मिलता-जुलता (शंग-टाइप) शासन बताया है। वांग हे नदी के दक्षिण में हेबेही में और उत्तर में अन्यंग नामक स्थानों पर परवर्ती पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं।

उत्तरी चीन में अलग-अलग जगह अलग-अलग सभ्यताओं के छोटे-छोटे राज्यों के कतिपय प्रमाण मिले हैं। इन राज्यों का शंग-वंश से लगातार युद्ध होने के भी साक्ष्य मिले हैं और इनमें से एक झाऊ नामक राज्य दक्षिण चीन में भी कुछ इलाकों में फैला। कनफ्यूशियस और लाओ जे जैसे दार्शनिक झाऊ राज्य में ही हुये। झाऊ वंश के बाद फिर से छोटे-छोटे इलाकों में अनेक राज्य उभरे और इसीलिये चीन के हर इलाके की भाषा अलग-अलग है। आज भी कथित मंदारिन भाषा (जो कृत्रिम नाम है) बोलने वालों की संख्या चीन का दो तिहाई ही है। शेष एक तिहाई लोग बू, शियांग, हक्का, बू, केजिया, गण तथा मिन सहित सैकड़ों अलग-अलग भाषायें बोलते हैं। मंदारिन को मुख्य चीनी भाषा कम्युनिस्टों ने पहली बार घोषित किया है। यह 20वीं शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्द्ध की घटना है।

झाऊ वंश के बाद जिस किन वंश का शासन हुआ, वे बाहर के निवासी थे और पश्चिमी सीमांत में रहते थे उन्होंने झुआंगुओ (चीन) को गुलाम बनाया। वस्तुत: इस वंश का नाम झेंग था जिसके प्रतापी शासकों ने स्वयं को किन यानी 'महान' कहना शुरू कर दिया। परन्तु इस वंश का शासन कुल 15 वर्ष ही रहा। इस वंश के शासकों ने पीत नदी घाटी के शासकों से भयंकर युद्ध किये।

इसके बाद अनेक विदेशी राजवंश आये और गये। 13वीं शती ईस्वी में मंगोलों ने चीन को गुलाम बनाकर उस पर शासन किया। मंगोलों से पहले भी उत्तरी चीन में तो निरन्तर

बाहरी लोगों का राज्य रहा। मंगोलों ने सम्पूर्ण चीन को अपने अधीन कर लिया। उत्तर में मंगोलों का राज्य सम्पूर्ण मध्य एशिया में फैलता रहा और चीन उसका एक अंग रहा। इस प्रकार सम्पूर्ण झुआंगुओ (चीन) मंगोलों की दासता में रहा।

14वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मंगोलों की पकड़ ढीली होने पर दक्षिणी चीन में एक अन्य विदेशी मिंग वंश का शासन हो गया। मिंग वंश समुद्री मार्ग से भारत तथा अन्य देशों के साथ व्यापार करता रहा। तब तक चीन के लिये पश्चिम का अर्थ था भारत। मिंगों की राजधानी नानछिठंग थी। मिंगों से मांचुओं ने शासन छीन लिया। मांचू मध्य एशिया की एक प्राचीन जाति थे, जो मूलतः भरतवंशी थे। मांचुओं ने चीन को गुलाम बनाकर उस पर 267 वर्षों तक शासन किया।

इसी अवधि में 18वीं शताब्दी ईस्वी में झुआंगुओ (चीन) में अंग्रेज, डच, फ्रेंच, स्पेनिश और पुर्तगीज लोग चारों ओर फैले और अफीम की खेती का दबाव बनाने लगे जिसको लेकर उनमें आपस में कई बार युद्ध हुये। मांचुओं ने विवश होकर सभी विदेशी यूरोपीय लोगों को व्यापार की बहुत सुविधा दी। इन विदेशियों से व्यापार की सुविधा के बदले में धन लेकर शासक विलासिता में डूब गये और संपूर्ण क्षेत्र अफीम के नशे में डूब गया। जगह-जगह उपद्रव होने लगे और इसके कारण वहाँ की संपूर्ण राजनैतिक व्यवस्था तथा अर्थ व्यवस्था लड़खड़ा गई। 19वीं शताब्दी के मध्य तक चीन इसी तरह एक बिखरा हुआ क्षेत्र बना रहा और वहाँ अलग-अलग इलाके में अलग-अलग लोग राज्य करते रहे।

इस बीच जापान ने 1854 ईस्वी में चीन पर आक्रमण कर उसे हराकर उसके बड़े भाग पर अपना कब्जा जमा लिया। बाद में 1931 ईस्वी से वह आगे और बढ़ता गया जो द्वितीय महायुद्ध के बाद अमेरिकी और पश्चिमी यूरोपीय हस्तक्षेप के बाद ही थम सका।

पहले यूरोपीय कंपनियों ने भी आपस में अलग-अलग इलाके बाँट लिये थे और प्रतिस्पर्धा करते रहे थे। जिससे चीन में व्यापक विक्षोभ हुआ। यूरोपीय ईसाईयों ने चीन में जगह-जगह अपने मिशनरी अड्डे बनाये, जिनकी चीन के स्थानीय लोगों से लगातार लड़ाइयाँ होती रहीं और मिशनरी लोग जगह-जगह बुरी तरह पीटे जाते रहे परंतु ईसाइयत के लिये कष्ट सहन की अपनी परंपरा के कारण वे लोग धैर्य से लगे रहे और चीन के कई स्थानों पर कान्वेंट स्कूल खुल गये तथा वहाँ ईसाइयत का प्रचार होने लगा।

ईसाइयत के प्रचार से क्षुब्ध एक लाख वीर झुआंगुओ योद्धाओं ने जो मार्शल आर्ट में बहुत दक्ष थे, विदेशी मिशनरियों को मारना-पीटना शुरू कर दिया। फिर बीछिठंग में ईसाई देशों के दूतावासों को घेर लिया। इस पर संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल, हालैंड की 2 लाख सैनिकों वाली संयुक्त सेनाएँ जर्मन सेनापति अल्फ्रेड ग्राफ वाल्डर सी के सेनापत्वि में वहाँ पहुँची और जमकर युद्ध हुआ। झुआंगुओ के 1 लाख वीर सैनिक, इन 2 लाख यूरोपीय ईसाई सैनिकों से हार गए। तब मांचू शासकों ने अमेरिका से संधि की। सभी वीर चीनी बॉक्सरों को यूरोपीय सेनाओं ने मांचू राजा के सामने ही फाँसी पर लटका दिया। क्षतिपूर्ति के रूप में 17 करोड़ टन शुद्ध चाँदी किश्तों में अमेरिका को देना तय हुआ। अमेरिका की ओर से कहा गया कि इस धन का उपयोग झुआंगुओ के छात्रों को अमेरिका में शिक्षा देने में किया जायेगा। इस प्रकार चीनी छात्र संयुक्त राज्य अमेरिका भेजे जाने लगे और वहाँ ईसाइयत की

दीक्षा भी लेने लगे तथा अन्य यूरो अमेरिकी विचारों और कम्युनिज्म की भी शिक्षा प्राप्त की। इन विचारों में दीक्षित होकर चीन वापस लौटने वाले इन युवकों में से कुछ चीन में ईसाइयत से प्रेरित होकर राजनैतिक दल बनाकर सक्रिय हो गये और कुछ ने कम्युनिज्म को अपना लिया। ईसाइयत से प्रेरित सन यात सेन और चांग काई शेक ने नेशनलिस्ट पार्टी की स्थापना चीन में की। जबकि कम्युनिज्म से प्रेरित युवक शीघ्र ही सोवियत संघ के कम्युनिस्ट नेताओं विशेषकर स्तालिन के प्रभाव में आ गये।

नेशनलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी दोनों ने मिलकर पहले तो 1911 ईस्वी में मांचुओं को विदेशी घोषित कर उन्हें हराकर चीन के एक हिस्से पर कब्जा कर लिया और वहाँ चीनी गणराज्य स्थापित करने की घोषणा कर दी। उधर जगह-जगह अलग-अलग जागीरें थीं जिनमें से हरएक का जागीरदार स्वयं को चीन का शासक कहता था। यूरोपीय लोगों ने इसका लाभ उठाने की कोशिश की।

सन यात सेन के साथ च्यांग काई शेक भी ईसाइयत से प्रभावित राष्ट्रवादी नेता बनकर उभरे और उन्होंने अमेरिका की भरपूर मदद ली। इस पर सोवियत संघ के नेता स्तालिन ने चीन में अपने एजेंट नियुक्त किये और वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना करा दी। रूस से चीन के कम्युनिस्टों को भरपूर धन दिया जाने लगा। इस पर कुछ चीनी कम्युनिस्टों ने हिचक दिखाई पर माओजे दुंग ने कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से खुल कर धन लेने की वकालत की और इस प्रकार सोवियत संघ की मदद से माओजे दुंग के नेतृत्व में गृहयुद्ध में माओजे दुंग का धड़ा भारी पड़ता गया और अंत में जाकर 1949 ईस्वी में कम्युनिस्टों ने नेशनलिस्ट पार्टी से मित्रता तोड़कर अकेले ही सत्ता पर कब्जा कर लिया तथा फैलने लगे। अब वे पुराने साथी नेशनलिस्टों की हत्याएँ करने लगे। सत्ता की इस छीना झपटी में जापान द्वारा चीन पर आक्रमण से उपजे परिवेश का लाभ माओ और कम्युनिस्टों ने उठाया तथा रूस और अमेरिका दोनों से जापान के विरुद्ध चीन को खड़ा करने के लिये भारी धन राशि प्राप्त की। माओजे दुंग ने रूस, अमेरिका और पश्चिमी यूरोप से साथ-साथ छलपूर्वक धन और अन्य मदद ली। सी आई ए ने नेशनलिस्ट चांग काई शेक की भी मदद की और कम्युनिस्ट माओजे दुंग की भी क्योंकि उसका इरादा अमेरिकी प्रभाव इस इलाके में बढ़ाना था। इस प्रकार रूस और अमेरिका दोनों की मदद का लाभ उठाते हुये कम्युनिस्ट पार्टी 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चीन में फैलने लगी। नेशन स्टेट की परंपरा से अनजान कम्युनिस्टों ने एक चीनी साम्राज्य के फैलाव की कोशिश की और मूल चीनी नेशन स्टेट को सुदृढ़ करने की कोई चिंता नहीं की जिसके कारण चीन एक द्रवणशील दशा में है। वह सोवियत संघ की तरह बिखरने वाला है।

तिब्बत में चीनी सेनायें पहली बार 1950 ईस्वी में प्रविष्ट हुईं जिसका तिब्बतियों ने प्रचंड विरोध किया और 9 वर्ष तक वे चीनी सेनाओं से वीरता से लड़ते रहे परंतु भारत की ओर से उन्हें कोई सहायता नहीं प्राप्त हुई। जिसके कारण 9 वर्ष बाद दलाईलामा को तिब्बत छोड़ कर भारत में शरण लेनी पड़ी तथा हिमाचल प्रदेश के एक मुख्य नगर धर्मशाला में उन्होंने अपनी निर्वाचित सरकार का सचिवालय स्थापित किया और वहाँ से ही तिब्बत की स्वाधीनता की अलख जगाये हुये हैं। इस प्रकार नेहरू ने तिब्बत चीन को सौंप दिया। इतना ही नहीं 1962 में चीनी कम्युनिस्टों ने भारत की कुछ जमीन छीनने की कोशिश की जिसके विषय में जवाहरलाल नेहरू ने लापरवाही बरती और

अन्ततः कई हजार वर्ग किलोमीटर भूमि कम्युनिस्ट उपनिवेशवाद के कब्जे में चली गई, जो आज तक है।

उधर अमेरिकी शासन से भी नेहरू ने तालमेल रखा। इंग्लैंड और अमेरिका तब कम्युनिस्ट रूस पर नियंत्रण के लिये पाकिस्तान को पोस रहे थे। उसके कारण नेहरू जी पर दबाव पड़ा और उन्होंने पाकिस्तान के प्रति अत्यधिक नरमी बरती और पाकिस्तानी आक्रमण होने पर कश्मीर का मामला संयुक्त राज्य संघ में ले गये जिससे कश्मीर के एक हिस्से पर पाकिस्तान का कब्जा बरकरार रहा और पाकिस्तान ने कश्मीर के उत्तर का बड़ा इलाका जो सिक्यांग कहलाता है, चीन को दे दिया। इस प्रकार चीन अपने संपूर्ण इतिहास में पहली बार कम्युनिस्ट साम्राज्य बन गया। जिसमें भारत के प्रधानमंत्री का निर्णायक सहयोग रहा।

वस्तुतः चीन कोई नेशन स्टेट नहीं है अपितु आपस में युद्धरत अनेक राष्ट्रीयताओं का समुच्चय है और वहाँ भीतरी झगड़े भयंकर रूप से चल रहे हैं और पूरा क्षेत्र कम्युनिस्ट पार्टी का उपनिवेश बना हुआ है। माओजे दुंग ने ९ करोड़ से अधिक चीनियों की हत्या कर एक आतंककारी शासन स्थापित किया परंतु चीन भीतर से धधक रहा है और द्रवणशील स्थिति में है क्योंकि इतिहास में कभी भी वह नेशन स्टेट रहा ही नहीं है।

भारत के राज्य और भारतीय नागरिकों की भूमिका : भारत के कांग्रेसी शासकों ने कम्युनिस्ट उपनिवेशवाद के विस्तार में सहायक की भूमिका निभाई और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का उपनिवेश तिब्बत, सिक्यांग, तुर्किस्तान, कजाक क्षेत्र, दक्षिणी मंगोलिया, दक्षिणी मंचूरिया और युन्नान तक फैलने दिया।

अब भारत में नया नेतृत्व आया है जो राष्ट्रभक्त है। वह नई भूमिका की दिशा में सक्रिय है। कोरोना वायरस दुनिया भर में फैलाने के कारण चीन से संयुक्त राज्य अमेरिका तथा यूरोप सहित विश्व के अधिकांश राष्ट्र नाराज हैं और कम्युनिस्टों को उनकी औकात दिखाने पर उतारू हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के एक संकेत पर जापान पुनः सशक्त होकर कम्युनिस्टों के द्वारा हथियाये गये दक्षिणी हिस्से पर दबाव बना सकता है। इसी प्रकार दक्षिणी मंगोलिया और मंचूरिया या तो मंगोलों और मांचुओं को दिया जा सकता है या उन्हें स्वाधीन राज्य बनाया जा सकता है। रूस स्तालिन द्वारा दिये गये उपहारों के रूप में उत्तरी इलाकों को वापस ले सकता है। तिब्बत तो अलग राष्ट्र है ही, जिसे विश्व का समर्थन प्राप्त होने पर वह पुनः स्वाधीन सशक्त राज्य बन सकता है।

कांग्रेसी शासकों ने कम्युनिस्ट चीनी शासकों से मधुर संबंध बनाकर या सौदेबाजी कर भारत के बाजारों में चीनी सामान का भंडार भर दिया था। भारत के नागरिक अपनी राष्ट्रभक्त सरकार को सहयोग देते हुये इन चीनी सामानों का बहिष्कार करें और कम्युनिस्ट चीन के विस्तारवाद की कांग्रेस के द्वारा की गई सहायता की निशानियों को मिटा दें। जिससे कि कम्युनिस्ट विस्तारवाद को आर्थिक बल नहीं प्राप्त हो। शेष काम तो सेना और शासन करेगा ही।

ए 142, आकृति हाईलैंड
पोस्ट आफिस - फंदा,
भोपाल 462030 (म.प्र.)
मो. 8989931954

व्याख्यात्मक आलोचना के आदर्श : सूर्यप्रसाद दीक्षित

- अमरनाथ



जन्म - 1954।
जन्म स्थान - रामपुर बुजुर्ग, गोरखपुर (उ.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ - लगभग सात पुस्तकें प्रकाशित।

सूर्यप्रसाद दीक्षित का समीक्षा क्षेत्र व्यापक है। वे आधुनिक साहित्य, मुख्यत: छायावाद के विशेषज्ञ हैं और मानते हैं कि छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता का शिखर है। उनके अनुसार साहित्य के सौन्दर्य की, शुद्ध कविता की और वृहत्तर मानव मूल्यों की सर्वश्रेष्ठ साधना छायावाद में प्रतिफलित हुई है। वे मानते हैं कि छायावाद ने कविता को स्वायत्त अनुशासन का रूप दिया है और उसे एक परिपूर्ण व्यवस्था के रूप में परिणत कर दिया है। उनके अनुसार छायावादी कवियों की अंतर्दृष्टि वैश्विक है। सौन्दर्यबोध छायावाद का सर्वाधिक मौलिक प्रदेय है। उनके अनुसार 'छायावादी कवियों ने भक्तिकाव्य तथा द्विवेदी युग के परहेजी संस्कार, रीतिकालीन कवियों के कायिक कौतुकी कदाचार और प्रगतिवादियों, प्रयोगवादियों एवं साठोत्तरी पीढ़ियों के यौनाकुल आवेश ज्वार से ऊपर उठकर सौन्दर्य की श्रेष्ठ साधना की है।' उनके अनुसार छायावादी कवियों का सौन्दर्य-विधान इतना व्यापक है, उनका चित्राधार इतना विराट है और उनकी सृष्टि इतनी विलक्षण है कि उसमें प्राय: जीवन का सर्वस्व समाहित हो गया है।

दूसरी ओर छायावादी गद्य की खोज करके उन्होंने छायावाद की अभिनव मीमांसा की है। प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी पर उनकी एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हैं। दीक्षित जी आज की पाठविहीन समीक्षा से असंतुष्ट हैं और भाष्य पद्धति को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयासरत हैं। उन्होंने 'राम की शक्तिपूजा', 'कुकुरमुत्ता : समीक्षा भाष्य', 'पद्मावत भाष्य' आदि लिखकर व्यावहारिक समीक्षा का एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया है।

छायावाद को इतना महत्त्व देने के बावजूद उनके सबसे प्रिय कवि तुलसी हैं। 'रामचरितमानस' को उन्होंने विमानवीकरण के दौर से गुजरते हुए वर्तमान युग की विभीषिका का मुक्तिमार्ग घोषित किया है। उनकी स्थापना है कि एक लेखक कलम के बलबूते पर जो बड़ी से बड़ी वैचारिक क्रान्ति कर सकता है, उसका उत्कृष्ट उदाहरण है 'मानस'। दीक्षित जी ने स्फुट रूप से आधुनिक काल से पूर्व के शताधिक कवियों की समीक्षाएँ की हैं जिनमें सरहपाद, गोरखनाथ, खुसरो, कबीर, सूर,

विद्यापति, चंदबरदाई, मीरा, रहीम, केशव, देव, बिहारी, घनानंद, पद्माकर, भूषण, मतिराम, घाघ, द्विजदेव आदि प्रमुख हैं। इसी तरह उन्होंने आधुनिक काल के भारतेन्दु से लेकर रघुवीर सहाय, दुष्यन्त, धूमिल और श्रीकान्त वर्मा तक के साहित्य की समीक्षा की है।

हिन्दी साहित्य के एक व्यवस्थित इतिहास की दिशा में दीक्षित जी ने कई महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। लोक साहित्य, दीक्षित जी का प्रिय विषय है। उन्होंने अवधी के लोक साहित्य का विस्तृत अध्ययन और हजारों गीतों, लोककथाओं, लोकगाथाओं, लोकनाट्यों, कहावतों आदि का संग्रह भी किया है।

शोध में दीक्षित जी की गहरी रुचि है। उन्होंने अल्पख्यात रह गए कई रचनाकारों जैसे- बेनी प्रवीन, गिरधारी, चंदन, चिन्तामणि, युगल अनन्य शरण, शिवसिंह सेंगर आदि की दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ खोज निकालीं और उनका पाठसंपादन किया। दीक्षित जी के अनुसार ज्ञान-विज्ञान के साहित्य और जनसंचार विषयक साहित्य के लिए आवश्यक है कि हम भाषा प्रौद्योगिकी और भाषा प्रबंधन के रहस्य को समझें। उन्होंने इस क्षेत्र में भी पर्याप्त काम किया है क्योंकि उनका मानना है कि आज जरूरत है भाषा को और अधिक प्रयोजनपरक बनाने की, ताकि वह जनसंचार, जनसंपर्क और कैरियर निर्माण में अधिकाधिक उपयोगी हो सके।

'तुलसी मानस : आस्था का अर्घ्य', 'तुलसी मत', 'पद्मावत भाष्य', 'साकेत : कुछ पुनर्विचार', 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और साकेत', 'छायावादी काव्य का व्यावहारिक सौन्दर्यशास्त्र', 'राज्याश्रय और साहित्य', 'आधुनिक - अत्याधुनिक हिन्दी कवि', 'हिन्दी साहित्येतिहास की भूमिका', 'साहित्य का इतिहास दर्शन', 'नया साहित्य : नए रूप', 'जन पत्रकारिता, जनसंचार और जनसंपर्क', 'भाषा प्रौद्योगिकी एवं भाषा प्रबंधन', 'संचार भाषा हिन्दी', 'अवधी भाषा और साहित्य संपदा', 'अवधी लोक वाङ्मय' आदि उनके प्रमुख आलोचना ग्रंथ हैं। दीक्षित जी ने 'उत्कर्ष', 'उद्भव', 'अवधी', 'ज्ञानशिखा', 'शोध', 'कुलसन्देश', 'साहित्य भारती', 'संचारश्री', 'चाणक्य', 'प्रभास' तथा 'खोज' जैसी पत्रिकाओं का समय-समय पर संपादन किया है।

व्यवस्था, व्यक्ति या विचारधारा- सबसे सामंजस्य बनाकर चलने वाले दीक्षित जी सिर्फ साहित्य के लिए समर्पित हैं। उनके व्याख्यानों में भी एक सिस्टम होता है। वे उसे भी किसी आलेख की तरह प्रस्तावना से शुरू करते हैं और निष्कर्ष पर जाकर खत्म करते हैं। उनके लखनऊ स्थित घर का नाम भी 'साहित्यिकी' है। अपने निजी पुस्तकालय को भी उन्होंने एक ट्रस्ट बनाकर सार्वजनिक उपयोग के लिए समर्पित कर दिया है। साहित्यिक अभिरुचि वाले लोग और शोधार्थी उनके ग्रंथालय का लाभ लेने नियमित रूप से जाते हैं। मैंने भी उनकी 'साहित्यिकी' का स्वाद लिया है। दीक्षित जी का आलोचना कर्म, 'कला कला के लिए' सिद्धांत का उत्तम उदाहरण है।

ई.ई-164/402, सेक्टर-2,
साल्टलेक, -700091 (कोलकाता)
मो. - 9433009898

पुण्य स्मरण

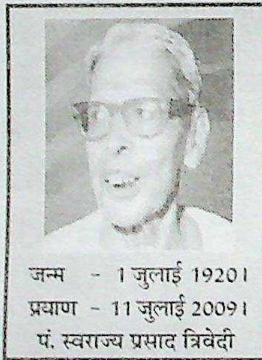
पत्रकारिता की पाठशाला : पं. स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी

- विनोद शंकर शुक्ल



जन्म - 30 दिसम्बर 1943।
रचनाएँ - व्यंग्य विधा की छः पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - म.प्र. प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वागीश्वरी सम्मान।

अनुभवों की आँच में तथा मुखमंडल, वृद्धावस्था में भी चैतन्य काया, विनोद की गहरी समझ से ओतप्रोत वाणी, भीतर दबी हुई विशेष आग, सृजन की शक्ल में बाहर आने को मचलती और बोलती हुई आँखें-यह कहती हुई कि हमने हर पहलू से दुनिया देख ली है। पं. स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी के प्रथम दर्शन पर कुछ ऐसा ही प्रभाव नव-आगन्तुक पर पड़ता था।



जन्म - 1 जुलाई 1920।
प्रयाण - 11 जुलाई 2009।
पं. स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी

यह घटना लगभग 1980 की है, जब मैं उनसे पहली बार मिला था, तब उनकी उम्र 60 वर्ष थी। उसके बाद 90 वर्ष की अवस्था यानी 2009 में अपने महाप्रयाण तक पंडित जी के जीवन में अनेक परिवर्तन हुए थे किंतु उनके व्यक्तित्व के मूल-तत्व अंतिम समय तक सुरक्षित रहे। पहली ही बार उनसे मिलकर यों लगा था जैसे शहर में कोई अपने गाँव का मिल गया हो। उनके व्यक्तित्व के पीछे वरिष्ठ पत्रकार, साहित्यकार और पूर्व सरकारी अफसर का प्रभामंडल व्याप्त था। मेरी हैसियत एक नवोदित लेखक की थी किन्तु वे मुझसे सहज आत्मीयता से मिले। व्यवहार के धरातल पर वे इतने सहज थे कि सारा अपरिचय कुछ ही क्षणों में धुआँ बनकर उड़ गया। पंडित जी प्रकृति की तरह समस्त भेदभाव से ऊपर उठे हुए नजर आए। उनकी अहंकार शून्यता, अक्रोध और बातचीत के अपने अंदाज का मुझ पर विशिष्ट प्रभाव पड़ा। वार्तालाप से सहज स्पष्ट हो गया कि उनका सौंदर्य बोध बहुत गहरा था। साहित्य, कला, संगीत-सभी तरह का सौंदर्य उनके अन्तस् की वीणा को गहराई तक झंकृत कर देता था। उनसे इतनी आत्मीयता हो गई कि उम्र का अंतराल जाने कहाँ अदृश्य हो गया।

पं. त्रिवेदी पत्रकारिता के सत्यनिष्ठ और समर्पित साधक थे। हिंदी पत्रकारिता का एक बड़ा दोष है कि वह हिंदी की सृजनात्मकता की उपेक्षा करती है। यही कारण है कि छत्तीसगढ़ में दैनिक पत्रकारिता में नींव के पत्थर होने पर भी उन्हें उनका प्राप्य नहीं मिला। इसमें संदेह नहीं कि छत्तीसगढ़ में पत्रकारिता को स्थापित करने में पंडित जी के रक्त और पसीने की खाद पड़ी है।

उनकी पत्रकारिता की शुरुआत 1938 से हुई, जब उन्होंने रायपुर से 'आलोक' नामक पत्रिका का संपादन प्रारंभ किया था। उसके बाद 1939 में जिला कांग्रेस कमेटी की साप्ताहिक पत्रिका 'कांग्रेस पत्रिका' के संपादन का दायित्व सँभाला। छत्तीसगढ़ में एक महत्त्वपूर्ण समाचार पत्र के रूप में साप्ताहिक 'अग्रदूत' का प्रकाशन 1942 में हुआ। इसके संपादक श्री केशव प्रसाद वर्मा थे और पं. त्रिवेदी इसके सहकारी संपादक थे। वह समय देश में भारी

राजनीतिक क्रांति का था और श्री वर्मा तथा पं. त्रिवेदी दोनों ही स्वतंत्रता संग्राम में सीधी भागीदारी कर रहे थे। इस समाचार पत्र ने 1942 में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रसार में इतना अग्रगामी कार्य किया कि अंग्रेज शासन की आँखें टेढ़ी हो गईं। फलस्वरूप पं. त्रिवेदी के घर पर छापा डाला गया और उन्हें भूमिगत होना पड़ा। स्वतंत्रता की आहट मिलने पर स्थितियाँ कुछ सुधरीं और पं. त्रिवेदी फिर से पत्रकारिता में पूरी ओज के साथ सक्रिय हो गए।

सन् 1946 में रायपुर से साप्ताहिक 'महाकौशल' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ तो उसके संपादक हुए पं. स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी। 'महाकौशल' स्वतंत्रता संग्राम से उपजी चेतना और आजादी से जुड़े जन-जन की खुशहाली के सपनों की वैचारिक पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व करता था। इसमें राजनीति के साथ साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को भी स्थान दिया जाता था। पत्र के संपादन के साथ-साथ कई स्तंभों का लेखन त्रिवेदी जी किया करते थे। वास्तव में 'महाकौशल' को त्रिवेदी जी ने छत्तीसगढ़ की वाणी बना दिया था। यही साप्ताहिक 1951 में छत्तीसगढ़ का पहला दैनिक समाचार पत्र बना और पं. त्रिवेदी इसके पहले संपादक बने।

छत्तीसगढ़ के प्रथम दैनिक के प्रथम संपादक होने का ऐतिहासिक दायित्व उन्हें मिला, अपने तप और त्याग से उन्होंने पत्रकारिता को स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा का प्रवक्ता बनाने में कोई कसर नहीं रखी। अंचल की पत्रकारिता ने जनशक्ति का रूप उनके और समकालीनों के प्रयासों से ही प्राप्त किया। आज हम जिस पत्रकारिता के वटवृक्ष की परितापशमन करने वाली शीतल छाया में बैठे हैं, उसे रोपित करते हुए सारी कड़ी धूप उन्होंने ही सहन की थी। पंडित त्रिवेदी जी गाँधीयुग के उन थोड़े से पत्रकारों में थे, जिनके लिए पत्रकारिता मानवसेवा और आत्मत्याग का पर्याय रही। समाचार पत्र देश और जनता के बीच पुल का काम करते थे। पंडित जी की कलम ने इस पुल को पुख्ता बनाने में पूर्ण समर्पण का परिचय दिया। माली जैसे पौधे के विकास में रुचि लेता है, पंडित जी ने अंचल की पत्रकारिता के विकास में रुचि ली। छत्तीसगढ़ में दैनिक पत्रकारिता के जन्मदाता के रूप में अभी उनका मूल्यांकन होना शेष है।

पंडित जी 1978 में फिर से कुछ समय के लिए 'महाकौशल' के संपादन से जुड़े किंतु बाद में वे 1980 में 'अग्रदूत' के सलाहकार संपादक बने। वे अपने जीवन के अंतिम समय तक 'अग्रदूत' से जुड़े रहे। तब 'अग्रदूत' के संपादक श्री विष्णु सिन्हा का कथन था कि 'वे छत्तीसगढ़ के वरिष्ठतम पत्रकार हैं और 80 वर्ष की उम्र में भी वे पूरी चुस्ती से कार्य करते हैं। उनके लेखों और संपादकीय ने अच्छे-अच्छों की खोज-खबर ली। उनकी आलोचना का संबंध व्यक्तिगत कभी नहीं रहा। उनकी आलोचना में शुभचिंतन रहता है।'

पंडित जी के मार्गदर्शन में मुझे भी पत्रकारिता सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। जब वे 'अग्रदूत' के सलाहकार संपादक थे, मैं पत्र का साहित्यिक-परिशिष्ट सँभालता था। मैंने पंडित जी में योग्य संपादक की पैनी दृष्टि के दर्शन किए। गूढ़ बातों को समझने और उनका विश्लेषण करने में उनका मस्तिष्क जितनी तेजी से चलता था, उस पर मुझे आश्चर्य होता था। वे राजनीतिक घटनाक्रमों और उनके परिणामों की व्यवस्था में परम विख्यात थे। उन दिनों उन्हें संपादकीय लिखते हुए देखना भी एक अनुभव था। कागज पर बिना काँट-छाँट किए उनकी कलम फर्राटा-धावक की तरह दौड़ती थी। गजब की स्मरण शक्ति के कारण किसी संदर्भ ग्रंथ की उन्हें कभी जरूरत नहीं पड़ी। शीघ्रता के बावजूद उनका संपादकीय परिपक्व, पठनीय और साहित्यिक स्पर्श लिए होता था। पंडित जी में रूढ़िमुक्त सोच और कलात्मक साहस भी भरपूर रहा। अपने सहयोगियों को वे नई सोच और प्रयोगों के लिए हमेशा प्रेरित करते रहे। उनकी उपस्थिति से वातावरण सदैव उत्फुल्ल एवं सृजनात्मक बना रहता था।

पंडित जी पत्रकारिता की एक पाठशाला की तरह रहे। चाहे वे 'महाकौशल' में हों या 'अग्रदूत' में - कितने ही लोगों को उन्होंने कलम पकड़कर लिखना सिखाया। छत्तीसगढ़ के कई बड़े पत्रकारों के प्रेरणास्रोत वे ही रहे। हरि ठाकुर, बच्चू जांजगीरी, गुरुदेव कश्यप, सतीश चौबे, बसंत तिवारी, कुमार साहू आदि अनेक पत्रकारों को उनके मार्गदर्शन का लाभ मिला था। पूरे छत्तीसगढ़ में संवाददाताओं को तैयार करने और उन्हें प्रशिक्षित कर पत्रकारिता में आगे लाने का श्रेय पंडित जी को है।

'अग्रदूत' में काम करते हुए मैंने उनमें संपादक की बनावटी अहम्मन्यता कभी नहीं देखी। फुरसत होने पर प्रूफ संशोधन से भी उन्हें कोई परहेज नहीं था। नये पत्रकारों को वे अत्यंत रुचि और धैर्य से समाचार बनाना, शीर्षक देना और प्रूफ पढ़ना सिखाते थे। उनके मशवरे बहुत महत्त्वपूर्ण होते थे। मैंने उन्हें समाचार पत्र के परिवार के सदस्यों की खुशी के साथ हमेशा हँसते देखा और परेशानियों के साथ सहानुभूतिपूर्ण शिरकत करते हुए। पंडित जी देखते थे तो कमरे का हर कोना खिलखिला उठता था।

पंडित जी में मैत्री-भाव बहुत था। मित्र या परिचित को देखते ही उनकी आँखें चमक उठती थीं। वे बैठे हों तो अतिथि को देखते ही उठने लगते थे, इससे उनकी सरलता एवं संस्कारशीलता झलकती थी। वार्तालाप में वे अनेक बार उत्तेजित भी हो जाते थे। किन्तु उनकी उत्तेजना में अधिक से अधिक उतनी ही गर्मी रहती है जितनी जाड़े की धूप में। मतभेद के कारण उनके मन में किसी के प्रति कटुता नहीं आई। वे जाग्रत ज्वालामुखी और शांत सागर एक साथ रहे। अनुचित कार्य के लिए बाध्य करने पर तत्काल नरसिंह अवतार धारण कर लेते थे, परंतु न्यायपूर्ण कार्यों के लिए उनमें गहरी संवेदनशीलता और आत्मीयता दिखाई देती थी।

पंडित जी का व्यक्तित्व कहीं दुरूह नहीं था। किन्तु उनकी अनेकरूपता को पकड़ना कठिन था। एक कल्पनाशील कवि, समर्पित संपादक, संवेदनशील कथाकार, कुशल प्रशासक और प्रखर वक्ता आदि उनके अनेक रंग थे। शायर की तरह उनके व्यक्तित्व पर लिखने वाले को भी समझ में नहीं आता 'कौन-सा रंग भरूँ इश्क के अफसाने में' साहित्यकार के रूप में उन्होंने अनेक विधाओं में लिखा। कविता के अलावा कहानी, निबंध, नाटक और समीक्षा पर भी उनका अधिकार था। यद्यपि उनकी साहित्य साधना का प्रधानक्षेत्र काव्य रहा। 1946 में ही बंगाल के अकाल पर मर्मस्पर्शी काव्य पाठ किया। आजादी के संघर्ष के समय उनकी राष्ट्रीय धारा की कविताएँ युवाओं में अपूर्व जोश का संचार कर देती थीं। उनके शब्दों की प्रखरता और वाणी की ओजस्विता श्रोताओं के मन में लंबे समय तक गूँजती रहती थी।

पंडित जी सच्चे अर्थों में कलम के बेटे थे। कलम का इस्तेमाल उन्होंने हमेशा जिम्मेदारी के साथ किया। सामाजिक समस्याओं पर निरन्तर लिखने के कारण यद्यपि उनके साहित्य पर पत्रकारिता की गहरी छाया दिखाई पड़ती है।

वस्तुत: पत्रकारिता की श्रेष्ठ रचनात्मक प्रवृत्तियों के सूत्रधार के रूप में उन्होंने 'महाकौशल' का जो स्वरूप निर्धारण किया था, उसी के प्रकाश में छत्तीसगढ़ में बाद में प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्रों को अपनी राह खोजने में ज्यादा मुश्किलों का सामना नहीं करना पड़ा।

पंडित जी ने ही छत्तीसगढ़ क्षेत्र में आंचलिक एवं ग्रामीण पत्रकारिता का बीजारोपण किया। अंचल की राजनैतिक और साहित्यिक दोनों ही प्रकार की पत्रकारिता के विकास में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सच कहा जाए तो उनका पत्रकारीय व्यक्तित्व इतना बड़ा है कि उसे शब्दों के कैमरे में कैद करना मुश्किल है।

35, संस्कृति/मेघ मार्केट के सामने
कोतवाली मार्ग विवेकानंद वार्ड,
रायपुर-492001 (छ.ग.)

संस्मरण

वड़ और एक नारी की पीड़ा

– गिरिजा किशोर पाठक



मूल रूप से ग्राम भदीना-डौणू; बेरीनाग, पिथौरागढ़ के रहने वाले भोपाल में आईपीएस अधिकारी हैं।

गाँव की प्रचलित कहावत है, वड़ माने झगड़ जड़। जब दो भाईयों के बीच में जमीन का बँटवारा होता है तो खेतों के बीच बँटवारे के बाद विभक्त जमीन में एक पत्थर गाड़ दिया जाता है जिसे वड़ कहते हैं। भाईयों में जमीन के बँटवारे पर एक बार वड़ डाल दिया जाता है तो यह वड़ हमेशा के लिए जमीन की सीमा रेखा बन जाती है। इस वड़ (सीमा रेखा) के कारण खेती-किसानी वाले परिवारों में बहुत झगड़े, लड़ाइयाँ, मुकदमे देखने को मिलते हैं। यह कहानी घर-घर की है। इसी पर कुमाऊँ क्षेत्र के गाँव में कहावत है कि-'भै छुटि स्वार' यानी भाईयों में बँटवारा हुआ, उसके बाद वह मात्र पड़ोसियों की तरह हैं। बँटवारे में जितने भाई उतने किरदार, उसमें भी जितने निठल्ले-नल्ले उतने जंजाल।

सच कहें तो यह कहानी घर-घर की ही नहीं राष्ट्रों के बीच की भी रहती है। जमीन का वड़ एक तरह से झगड़े की जड़ है। भारत-पाकिस्तान, भारत-चीन और भारत-बांग्लादेश के सीमा-विवाद भी भाईयों के 'वड़' विवाद की तरह पुश्त-दर-पुश्त चल रहे हैं।

जब हम बहुत छोटे थे तो देखते थे आमा (दादी) गाँव की खेती-बाड़ी उसके विभाजन और उस पर कब्जा रखने की बातों से बहुत परेशान रहती थी। आमा की मूल समस्या थी उनके देवर-जेठों के बच्चों और 'स्वार-बिरादरों' द्वारा मनमाने ढंग से वड़ का निर्धारण होता था। आमा बताती थीं कि पूरे क्षेत्रों में झगड़े की जड़ यही वड़ थे। वह कहती थी कि हमारे गाँव में दो ऐसे महत्त्वपूर्ण पुरुष थे जिनका काम अल्मोड़ा, सोर (पिथौरागढ़), और बागेश्वर जाना, वहाँ जाकर अपनी नई जमीन वर्ग 4 के लिए दरख्वास्त लगाना और वड़ के झगड़े पर राजस्व कोर्ट में हर बार एक नई एप्लीकेशन डाल देना, होता था। उनकी इस करतूत से गाँव के आधे लोग राजस्व न्यायालयों में लाइन लगाकर खड़े रहते थे।

इन दो महानुभावों की विशेषता यह थी कि पूरे अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ की कचहरी के अर्जुनमेस (complaint writers), कानूनगो, नायब तहसीलदार, तहसीलदार और एसडीएम स्तर के अधिकारियों से इनके सौहार्दपूर्ण संबंध रहते थे। इनके सौहार्दपूर्ण संबंधों और दैनिक शिकायतों के कारण पूरा गाँव त्रस्त रहता था या यूँ कहें कि ये दोनों मिलकर पूरे गाँव के लोगों को चकरघिन्नी बनाकर रखते थे। आमा कहती थी कि बाबू मास्टर थे, बेचारे, उन्हें स्कूल के बच्चों की पढ़ाई छोड़ कर महिने में दस दिन तो

अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ की कचहरियों में खड़ा रहना पड़ता था। न जाने उस जमीन के कितने मुकदमे बाबू ने अल्मोड़ा और सोर की कचहरी में लड़े थे। यह बात उनको भी याद नहीं। अनावेदक की उपस्थिति के लिये राजस्व न्यायालय जो तय करता था, उसे मुकरण कहते थे। आमा ने उस जमीन में कब्जा और खेती करने के दौरान बहुत यंत्रणाएँ झेली थीं।



उनके जेठ-देवरों के लड़के कई बार खड़ी फसल ही काट ले जाते थे। कई बार तो खेत में बैल जुते होते थे तो जमीनी हिस्से को विवादास्पद बताकर ये लोग बैलों का जुत्तौड़ (जुए और हर को जोड़ती रस्सी) काट जाते थे। इस सीन को देख कर हलिया भाग जाता था। जिससे दिनभर की बुआई बंद और खेती का कार्य समाप्त। जमीन के वड़ के झगड़े के कारण आपसी संबंध अत्यधिक कटु हो जाते थे। दबाव बनाने के लिए यहाँ तक कि पानी के धारे के रास्ते में वे काँटे डाल देते थे। उनसे कुछ बोलो तो पिटो। डर ये था कि हाथ उठाने से भी वे सब परहेज नहीं करते थे। ये सब बताते-बताते दादी की आँखें टपकने लगती थीं जिन्हें छुपाने के लिए वह तत्काल पल्लू से आँखें पोंछ लेती थीं। फिर बात का संदर्भ बदल देती थीं।

मैं तो समझ ही नहीं सकता कि अकेले दादी ने गाँव की जमीन की रक्षा, उसके विभाजन, उसके बँटवारे और उसमें खेती कर परिवार पालने जैसे कार्यों को पूरा करने के लिए कितनी यंत्रणाएँ झेली होंगी। उस जमीन पर कब्जा रखने के लिए कितना मानसिक तनाव झेला होगा। हाँ, यहाँ पर यह बताना भूल गया कि हमारे दादा जी को यायावरी बहुत पसंद थी। उन्हें जमीन जायजाद खेती-बाड़ी का बहुत लोभ नहीं था। भारत भ्रमण उनका अद्भुत शौक था। तीन बार तो वे कैलाश मानसरोवर की यात्रा कर चुके थे। उनकी मूल दृष्टि थी कि बच्चे अच्छी तरह पढ़-लिख जाएँ। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपने सभी बच्चों को बनारस, लाहौर और हरिद्वार जैसे शिक्षा केन्द्रों में भेज दिया। उसी यायावरी में शायद आजादी के एक-दो साल के अंतराल में एक तीर्थाटन में उनका निधन हो गया। मृत्यु का समाचार भी बाबू जी को कई महीनों बाद मिला और उसके बाद सनातन धर्म के अनुसार बाबू जी ने उनका क्रिया-कर्म किया।

मुझे आश्चर्य होता है अकेली दादी उस जमीन पर खेती करने, उसके वड़ के झगड़ों से निपटने और अपने ही स्वार-बिरादरों के लगाये मुकदमों से लड़ने के लिए जब तक जिंदा रहीं तब तक चट्टान की तरह खड़ी रहीं। उन्होंने वीरांगना की तरह खेती-बाड़ी के बल पर बच्चे, नाती-पोते सबकी परवरिश की और सबके

सपनों को पंख दिए। 1978 में दादी हम सब को छोड़ कर चली गयीं।

आमा का हम सब को छोड़ कर जाने का मतलब था हमारे परिवार की खूँटी का उखड़ना। बाबू जी और उनके सब भाई दादा जी के बेहतर शिक्षा प्लान के कारण भारत के विभिन्न संस्थानों में बेहतर सेवा करने लगे। उनके नाती-पोते विश्व के विभिन्न देशों में उनकी यश पताका सफलता पूर्वक फैलाने में सफल रहे हैं। दादी की परवरिश और दादा जी का पुण्य भाव सबको फलित हो रहा है।

दादी के इस हिम्मत और हौसले से मैं समझ पाया कि पुरुष होने से उसमें पुरुषार्थ नहीं आ जाता। पुरुषार्थ उसे कहते हैं जो विपरीत परिस्थिति में परिवार, समाज और राष्ट्र का रक्षाकवच बन सके। आमा रक्षाकवच थीं। उनके पुरुषार्थ के चर्चे आज भी गाँव में चलते हैं।

रही बात उस जमीन की जिसको आमा अपनी भावनाओं, अपनी संवेदनाओं और अपने विचारों से सींचती रहती थीं, जिसके लिए लड़ती रहती थीं और जिस वड़ की रक्षा के लिए वे चट्टान की तरह खड़ी रहती थीं, वह जमीन आज बंजर है। वड़ जिनके कारण झगड़ा होता था, वहाँ एक मुर्दे की तरह सुषुप्त की स्थिति है और वह मकान जिसमें दादी ने हम सब की परवरिश की थी, वह खेत जिनमें वड़ खिसकाने, खेती के लिए जुतौड़ काटने के कई किस्से दादी सुनाती थीं, आज बंजर है या कुछ वही लोग उससे जीविका चला रहे हैं, जो गाँव में बचे हैं। मकान के पत्थर शेष हैं। सारे मकानों में सिसोड़ (विच्छू घास) अँगड़ाई ले रहा है। सबसे गजब की बात कि लगाए गए ताले में भी बिच्छू घास जम गई हैं।

समय का चक्र है वड़ खिसकाने वाले, दरख्वास्त न्यायालय में लगाने वाले और राजस्व न्यायालय में मुकदमा ठोकने वाले, आज सब प्रभु को प्यारे हो गए हैं लेकिन वह जमीन वहीं पर है। सारी पीढ़ियों को मुँह चिढ़ाते हुए जैसे बोलती है कि क्या पाया? क्या खोया? इसका हिसाब कौन लगाये।

हाँ, मैंने एक कदम जरूर उठाया कि अपनी दादी के आँसुओं की स्मृति में छोटा सा घर उस जमीन पर आबाद किया है। यद्यपि हम वहाँ कम ही जा पाते हैं लेकिन वह घर दादी के प्रति हमारी श्रद्धांजलि का एक प्रतीक है। उनके मन में पीड़ा थी कि जिसके लिए वह वीरांगना की तरह लड़ीं, उस कूड़ी-बाड़ी को पूरी पीढ़ी छोड़ कर चली गई। कभी-कभार जब हम गाँव जाते हैं तो दादी की स्मृति आँखों की नमी को रोक नहीं पाती। वह हमारे बीच नहीं हैं पर हमारी स्मृतियों में राज करती हैं और रोज मन को नयी उर्जा और जीवन को नई प्रेरणा देती हैं। मैं उनकी क्षमता, संघर्ष, और उनके पुरुषार्थ को नमन करता हूँ।

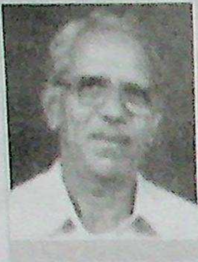
37, प्रधान देवलोक फार्म्स,
लेन नं.-2, ई/8 एक्सटेंशन,
अरेरा कालोनी, भोपाल -462039 (म.प्र.)

ललित निबंध

किसान के नाम धरती की पाती

(नरवाई जलाने के संदर्भ में)

- नर्मदा प्रसाद सिसोदिया



जन्म - 3 जनवरी 1954।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ललित निबंध का निरंतर प्रकाशन।

हूँ, हाँ, तुम मुझे धरती माई कहते हो! और तुम माटी पुत्र कहलाते हो। तो पहली बात में बीता हुआ पाती में उजालती हूँ। हाँ, तुम्हारे पुरखे तो खेती को मछन्दरी माई कहते-कहते कितने हुलसते थे। हरहराकर हलूर गाते थे। मैंने हुमकारा भरे थे तो खूब याद है कि भोर की लालिमा फैलते ही अपनी बैल जोड़ी के कंधों पर जूड़ा-जुताल लेकर, हल-बक्खर लेकर, खेत की ओर चल पड़ते थे। कुनकुनी धूप निकलते-निकलते पिरोना दो पिरोना खेत की जुताई कर लेते थे। पसीने से लतपथ होते देखना कितना सुकून देता था। दूर राहड़ की पगडंडी से सिर पर पानी का घेला रखे हुए और एक हाथ में गलने में कलेऊ लिये पत्नी आती दिख जाती। मानो साँसों को सुस्ताने की सहानुभूति मिल गई। बस! माटी के ढेलों पर बैठकर चटनी, मिर्ची, गुड़, नमक के स्वाद में दो रोटी का कलेऊ करते देखकर मेरी छाती सिहर उठती थी।

चैत के महिने में अपनी गेहूँ की पकी फसल पति, पत्नी मिलकर काटते थे। हाँ, तुम्हारे पसीने की बूँदों से अपने आप अभिषेक हो जाता था। तुम्हारा संतोषी स्वभाव देखकर मैं तो फूली नहीं समाती थी।

पहली बात में तो बीती हुई उजली धुपकली देखी तो दूसरी बात बताने में म्हारी छाती फटे। पर! कहना सुननो पड़ेगो। अरे छोरा हुन! अब ये ऐसा क्या हुआ है कि वे अतीत की सुनहरी छबियाँ तिरोहित होती जा रही हैं। हाँ, बाँधों को आधुनिक तीर्थ कहा गया है तो जब से तुम्हारे इन खेतों तक मेरी देह पर निर्मित बड़े-बड़े बृहताकार बाँधों के जलाशय से, छोटी-बड़ी नहरों से तुमने फसलों में सिंचाई करना सीखा। हाँ, तब से तुमने अपनी खेती के परम्परागत साधन-बैल, हल, बक्खर, दूफन, नाड़ी, जोत से सदा के लिये राम-राम कह दी। और कह दी राम-राम गोबर के खाद से।

फिर क्या था कि ट्रेक्टर, कल्टीवेटर, सिडिल, हारवेस्टर जैसे नये-नये कृषि यंत्रों का आगमन हुआ। हाँ, इनके उपयोग से मेरे रोम-रोम अचम्भे से सिहर उठे। तो पहली-पहली बार ट्रेक्टर में लगे कल्टीवेटर से खेत जोतने और सिडिल से बोनी करते कम आश्चर्य हुआ था। कई दिनों की बखरनी बोनी अब दो चार दिनों में हो जाती है।

तो ये बात भी कम है कि डी.ए.पी. पोटाश, यूरिया जैसे रासायनिक खाद के उपयोग

से एक एकड़ जमीन में एक क्विंटल चौकड़ी गेहूँ बोते हैं हाँ, बीस से पच्चीस क्विंटल गेहूँ प्रति एकड़ गहाते हो। चौकड़ी के गेहूँ, पानी और खाद से खूब कूचा करते हैं-फसल से खेत खूब भर जाते हैं। हाँ, हारवेस्टर से गेहूँ कटाई खूब ऊपर से होती है सो छूटी हुई शेष सघन नरवाई से खेत भरे-पूरे होते हैं।

अब असल बात यह है कि तुम्हें जल्दी-जल्दी होड़ा-होड़ी करनो है। दो पहिया गाड़ी, चार पहिया गाड़ी लोन उठाई-उठाई खरीद ली है। पक्का मकान बनाया है। छोरा-छोरी की शादी-ब्याह गार्डन से की है। बैंक की के.सी.सी. का जरिया उल्टो-सुल्टो करनो है। हाँ, अपनी घर की बात है कि या की टोपी ओका माथा अरू ओकी टोपी दूसरा का माथा करनो है, सो सब माटी पुत्रों ने एक-एक, दो-दो, चार-चार, छः-छः नलकूप खनन करा लिये हैं भैया! गर्मी का मई-जून दो महिना की मूँग की फसल लेनो है तो बस! खेत की जुताई करना की उलात है। गेहूँ की पकी फसल की कटाई का बाद छूटी हुई ऊँची-ऊँची सघन नरवाई ट्रेक्टर के कल्टीवेटर से बखरनो कठिन लगे है सो चोरी-चुपके माचिस की काड़ी लगा आते हैं।

उढाला का उमस भरे दिन। धूँ-धूँ करती आग हवा मुहानी उड़ती जाय। और देखते-देखते कितने ही खेत की नरवाई स्वाहा हो जाती है। और तो और कोई-कोई खेत की खड़ी फसल जल जाती है। नरवाई से जले खेतों में हारवेस्टर की कटाई में गिरे हुए गेहूँ के जले दाने देखकर 'जी' दुखता है। और 'जी' ऐसे भी दुखता है कि जिनके गेहूँ से भरे खेत जल जाते हैं तो वे दाने-दाने से मोहताज हो जाते हैं।

तो मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिला के निमसाड़िया गाँव की बात बताऊँ- घर-घर की जानूँ, सो नरवाई जलने की घटना घट गई। निमसाड़िया गाँव का आसपास के चार-पाँच गाँव की गेहूँ की फसल नरवाई की आग में जल गई थी। छोरा हुन सुन जो गुन जो-या नरवाई की आग हारवेस्टर से लगी होय या फिर भूसा बनाने की मशीन से लगी हो या बिजली का खम्बा में लटकती तार लाइन से लगी हो अरू चोरी चुपका काड़ी लगाई हो। पर! कान पकड़ें कौन का।

एक जरा सी चिनगारी ने उड़ी-उड़ी चार-छः कोस का गोया गढ़वाट नापी ली। पर! अपन इन नरवाई का जलेल खेत तो देखाँ-सरसराती गरम-गरम हवा ने नरवाई की ऊँची-ऊँची लालचट लपट ले आई खेत का टप्पर में। सिंचाई का पाइप जल गये। टप्पर के डाँडे जले-जलाए डूँडे-मूँडे हो गये। तुम्हें धुनी धार रोते देख बया पक्षी भी चीं-चीं करने लगी। बबूल में लटके उनके सारे घोंसले जल गये। समय रहते बया के झुंड उड़ गये पर! सैकड़ों की संख्या में दीमक अपनी कलाकृतियों के कँगूरों में समाधिस्थ हो गई। और आगे देखें गढ़वाट के किनारे मझोले कद के पीपल में मधुमक्खी के छत्ते में जलती नरवाई के धुआँ लगते ही मधुमक्खियाँ तो उड़ गईं पर-शहद टपाटप टपाटप टपक चुका था। बेचारी टेर लगाए तो कैसे लगाए?

और तुम्हारी धरती माई के माटी को ढेलों उठाई कर तो देखो! हाँ, चाचुआ लगा है, सो केंचुआ की गुड्डुलमुड्डुल नश-नाड़ी चिपकी है। बिल के भीतर केकड़ा कुरकुरे हो गये। चींटा-चींटी की काई बिसात। झाड़ी झुरमुट में मकड़ी का जाला की तान समिधा में समा गई।

तो नरवाई की आग में समा गया तुम्हारी धरती माई का पारिस्थितिकी तंत्र। यह असंतुलन हो रहा है सो एक बात और बताना चाहती हूँ- 'सूर्य आत्मा जगतस्थस्थुषश्च'-वह वनस्पति का आधार है। मैं घूर्णन और परिक्रमण की रीति से सूरज के चक्कर लगाती हूँ। भला! तब दिन रात बनते हैं। मौसम और जलवायु की तासीर सिरजती है। पर! सूरज गुस्से में है वर्षा, ठंड, गर्मी का कोई टेम-टेबिल अब नी है, तो तुम जान रहे हो कि कहीं अल्पवृष्टि, कहीं अतिवृष्टि और कहीं असमय वृष्टि होती है हाँ, किसान की फसलें जरूर प्रभावित होती हैं, बाजार नरम-गरम होते हैं। और तब तुम मुआवजा के लिये आस लगाए-लगाए रहते हो। भला! सरकार कैसे!-कैसे! पुराव करे। घर-घर में घट रहा है तो सबको मिलकर संतुलन बनाना चाहिए। इस संतुलन में मेरी आँखें छलछला आती हैं। छाले फफोले कैसे! कैसे! सहन करूँ। तुम्हारा वह संतोष कहाँ हिरा गया। पर! मैं तो या जानूँ कि भाग्य बनानो और भाग्य बदलनो तुम्हारा हाथ में है। मेरे सृजन में वात्सल्य और डाँट दोनों हैं। जिस बेटे के हृदय को माँ की लोरी के गीत द्रवित करेंगे वह जरूर कुमकुम-अक्षत लगाएगा।

म्हारी अरदास है कि उन्नति का लिये मूँग की फसल बोओ पर! गेहूँ की कटाई के बाद खूब भूसा बनाओ। बड़ी-बड़ी नरवाई रोटावेटर और कलटीवेटर से बखरकर खेत बनाओ। नरवाई का छोटा-छोटा टुकड़ा बटका बनेंगे तो खेत में खाद बनेगो। नरवाई नी जलाएगा तो तुम्हारी जमीन का कीड़ा-मकोड़ा बचेगा। हाँ, घास खरपतवार को बीज बचेगो। गऊ माता को घास चारो बचेगो। छोटी-मोटी सम्पत्ति को हानि नुकसान बचेगो। और बचेगा पारिस्थितिकी तंत्र।

ऑफीसर रेसिडेंसी, कंचन नगर,
रसूलिया, होशंगाबाद-461001 (म.प्र.)
मो. 9926544157

पाठकों को सूचना

कोरोना संकट और उसके कारण लगाई गई तालाबन्दी ने 'अक्षरा' के समय पर प्रकाशन और फिर डाक द्वारा भेजने की व्यवस्था में अवरोध उपस्थित किया है। इसलिये छपकर तैयार अप्रैल अंक लॉकडाउन खुलने के बाद ही पोस्ट किया जा सका था। मई-जून अंक को संयुक्त रूप से प्रकाशित किया अप्रैल से अब तक के सभी अंक हमने ऑनलाइन भी प्रसारित किए हैं। प्रयास है कि अंक समय पर आपके हाथों में पहुँचे।

ऑनलाइन अक्षरा भेजने का एक लाभ यह अवश्य हुआ कि अनेक नए पाठकों ने उसे पढ़कर सदस्य बनने की इच्छा व्यक्त की है। हम सिंतबर तक आनॅलाइन प्रसारित करते रहेंगे। सदस्यों को पत्रिका ऑनलाइन के साथ नियमित पोस्ट की जायेगी। आपसे अनुरोध है कि सितम्बर तक 'अक्षरा' की वार्षिक या अजीवन सदस्यता ले लें। अक्टूबर अंक से निशुल्क भेजना संभव नहीं

सुशील कुमार केडिया
प्रबंध संपादक

कैलाशचन्द्र पन्त
प्रधान संपादक

यात्रा-वृत्तांत

प्रवासी भारतीयों की करुण गाथा कहता : आप्रवासी घाट

- शकुंतला कालरा



जन्म - 11 सितंबर 1964।
जन्म स्थान - बक्खर (पाकिस्तान)।
शिक्षा - एम.ए., पी.एच.डी., डी.लिट.।
रचनाएँ - 45 पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय संपादित।
सम्मान - हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा बाल एवं किशोर साहित्य सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

विदेशों में बसे भारतीय मूल के लोग जहाँ-जहाँ बसे हैं उनमें से मॉरीशस भी एक देश है जिसे लघु भारत कहा गया है। अंग्रेज भारत के असहाय और निर्धन मजदूरों को धोखा देकर मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, गुयाना, दक्षिण अफ्रीका, ट्रिनिडाड आदि देशों को ले गये थे। वहाँ उन पर भयावह अत्याचार किये गये। अंग्रेजों ने निरीह मजदूरों को बताया था कि मॉरीशस में पत्थर उलटने पर सोना ही सोना मिलता है। अंग्रेज ऐसा झाँसा देकर उन्हें जहाजों में भर-भर के ले जाते रहे। उनकी नंगी पीठ पर कोड़े मारे जाते, जूतों की ठोकरों से उन्हें पीटा जाता। उन्हें सूर्योदय से सूर्यास्त तक बारह-बारह घण्टे खेतों से पत्थर उखाड़ ने का काम करना पड़ता। धूप या वर्षा से बचने के लिए यदि वे थोड़ी देर को किसी पेड़ के नीचे खड़े हो जाते तो उन पर हण्टरों की मार पड़ती। स्त्रियों का यौन-शोषण किया जाता। प्रसव के बाद भी उन्हें आराम नहीं करने दिया जाता। वे बच्चों को असुरक्षित छोड़कर काम पर आ जातीं। मजदूरों को अधूरा और ऐसा खाना दिया जाता जिससे उन्हें अपच हो जाता और वे बिना दवा-दारू के मर जाते। उन्होंने सब कुछ सहा, किन्तु अपने धर्म और संस्कृति का परित्याग नहीं किया। उन्होंने 'रामचरितमानस' और 'हनुमान-चालीसा' से सम्बल और प्रेरणा प्राप्त कर आततायी शक्ति के विरुद्ध संघर्ष किया। अन्ततः उन्होंने विजय प्राप्त की।

मॉरीशस समुद्र की गोद में बसा एक द्वीप है, चहुँ ओर से पर्वत जिसका अभिषेक करते हैं। ऊपर फैले नीले आकाश के मंडप के नीचे हिंद महासागर की नीली-हरी, शांत-चपल लहरें नाद और लय के साथ नृत्य करती हैं। जहाँ हरीतिमा ही हरीतिमा है। जो प्राकृतिक संपदा के साथ सांस्कृतिक संपदा में भी समृद्ध है। जहाँ हर घर में रामायण का पाठ होता है और प्रांगण में हनुमान जी विराजमान हैं। जहाँ गंगाताल के किनारे तेरहवें ज्योतिर्लिंग के रूप में मारीशेखर महादेव का मंदिर है। जहाँ माँ दुर्गा घर की शोभा हैं। जहाँ मरियम हैं, ईसा मसीह हैं। जहाँ फ्रेंच संस्कृति और ईसाई धर्म के बीच में भारतीय संस्कृति अडिग और सुरक्षित है। जहाँ घर-घर, गाँव-गाँव में लोग हिन्दी बोलते हैं। जहाँ अपनों के बीच संवाद की भाषा भोजपुरी है। जहाँ 'रामचरितमानस' सर्वप्रिय धर्मग्रंथ है, जिससे वे मार्ग-निर्देश ग्रहण करते हैं। जहाँ सभी भारतवंशी भारत को अपनी 'माँ' मानते हैं, जिन्हें भारत अपना घर लगता है और जिसके साथ वे गहरा आत्मीय जुड़ाव महसूस करते हैं। ऐसा देश है मॉरीशस। ज्वालामुखी के मुख से निकले लावे के ढेर पर बसा एक छोटा-सा द्वीप, जिसकी राजधानी 'पोर्ट लुई' है। यह वह द्वीप है जिसके पूर्वजों को 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों के दलालनुमा

सरदार सोने के सब्ज-बाग दिखाकर गिरमिटिया मजदूर बनाकर इस द्वीप पर लाये। जिस ढाल के सहारे उन्होंने शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक दासत्व को सहा और विधर्मी बनने के हर प्रयास को विफल कर दिया वह था उनका संस्कृति-प्रेम।

भारत की प्रतिच्छवि मॉरिशस को देखने की तीव्र उत्कंठा वर्षों से मन में थी। वहाँ के हिन्दी के जाने-माने साहित्यकार भारत आते और दिल्ली विश्वविद्यालय में उनके व्याख्यान होते। जब हम आप्रवासी भारतीयों द्वारा वहाँ की प्राकृतिक सुषमा, हिन्दी भाषा के उन्नयन एवं विविध विधाओं में लेखन की उत्तरोतर प्रगतिशील स्थिति को सुनते अथवा विभिन्न पत्रिकाओं में आप्रवासी साहित्यकारों की रचनाएँ पढ़ते तो मन मॉरीशस-भ्रमण के लिए और भी लालायित हो उठता। यह मेरी साहित्यिक यात्रा थी किंतु मुझे अपने प्रतिनिधि मंडल के साथ मॉरीशस घूमने का भी पर्याप्त समय मिला। मॉरीशस में यह हमारा अल्पकालीन प्रवास था, 3 अगस्त से 10 अगस्त, 2008 तक। हम मात्र एक सप्ताह वहाँ रहे। वहाँ के निवासी चाहे भारतीय मूल के हों चाहे मॉरीशस मूल के अथवा अन्य राष्ट्रों चीन, लंदन, अमरीका या अफ्रीकन आदि के, परस्पर समन्वय और वैचारिक उदारता का जैसा भाव यहाँ दिखाई देता है वैसा दुनिया के किसी देश में नहीं। परस्पर सहयोग की यह भावना प्रशंसनीय भी है और अनुकरणीय भी। मॉरीशस की धरती पर अपने ही चेहरे-मोहरे वाले, उसी कद-काठी और नैन-नक्श वाले लोगों से जब पहली बार मिले तो वे चेहरे इतने परिचित लगे जैसे उनसे कोई रिश्ता रहा हो। हजारों मील दूर अपरिचित देश में इनकी आँखों में जो प्रेम-संवेदना देखी तो लगा जैसे हम अपने रक्त-संबंधियों से मिल रहे हैं। हमें मॉरीशस में सर्वत्र भारत और भारतीयता के दर्शन हुए।

भारतीय परिवेश और प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न लघु भारत मॉरीशस की यह मेरी पहली यात्रा थी। 3 अगस्त पूर्वाह्न 11 बजे इंदिरा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे, नई दिल्ली के प्रस्थान टर्मिनल 2 के गेट नं. 3 पर 24वें अन्तर्राष्ट्रीय रामायण-सम्मेलन में भाग लेने आए भारत के विभिन्न प्रांतों के प्रतिनिधि एकत्र हो रहे थे। विश्व के अन्य देशों से आए प्रतिनिधियों सहित पैंतीस साहित्यिक व्यक्तित्व यात्रा के लिए एकत्र हुए थे। 2-30 बजे हमारे विमान एम-के- 745 ने रनवे से आकाश की ओर अपनी यात्रा आरंभ की। ठीक 3-00 बजे विमान धरती से ऊपर उठा और हम आकाश में आ गए। विमान अपनी पूरी गति के साथ उड़ान भरने लगा। अब वह ज़मीन से ऊपर उठने लगा और देखते-ही-देखते हजारों फीट ऊपर उड़ चला, बादलों के पार। धरती छूटने लगी। हरी-हरी, छोटी-छोटी झाड़ियों जैसे लगते ऊँचे पेड़, खिलौने जैसे लगते बहुमंजिले मकान, चींटी जितनी लगती रंग-बिरंगी सड़क पर दौड़ती गाड़ियाँ। धीरे-धीरे सब कुछ छूट गया। अब शेष बचे थे केवल बादल। सफेद-काले, सलेटी बादलों के बीच पंख फैलाता हमारा विमान एक विशाल पक्षी लग रहा था। खिड़की से बाहर देखा। विमान के नीचे-ऊपर, दायें-बायें कपास के ढेर और चाँदी की तरह धूप में चमकते बादल दौड़ रहे थे और साथ ही विमान भी। ऊपर बादल और नीचे विशाल समुद्र। बादलों के बीच हमारा विमान उड़ रहा था और उसके भीतर बैठे हम उड़ रहे थे, एक कल्पना-लोक में। अचानक घोषणा हुई कि हम गन्तव्य स्थल की ओर पहुँच गए हैं। यहाँ के स्थानीय समय के अनुसार रात्रि के 9-

00 बजे हैं। अपनी-अपनी सीट की पेटियाँ कसने के आदेश हुए। विमान का अवतरण हो रहा था। साढ़े सात घंटे की लम्बी उड़ान के पश्चात् हमारा विमान एम-के-745 हिंद महासागर के ऊपर उड़ता हुआ 'सर सिऊ सागर रामगुलाम अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे' पर वहाँ के स्थानीय समय के अनुसार रात्रि 9-00 बजे उतरा। विमान से बाहर निकलने पर मॉरीशस की धरती की ठंडक भरी हवा से हमें मौसम का बदलाव महसूस हुआ। ऐसे लगा जैसे शिमला की घाटियों में आ गए हों। स्वागत का एक बड़ा बैनर चार लोग पकड़कर खड़े थे। जिस पर '24वाँ अन्तर्राष्ट्रीय रामायण-सम्मेलन मॉरीशस' लिखा था। यहाँ हमारा पहला स्वागत हुआ। पंडित अरुण जी ने लल्लन प्रसाद व्यास जी का पुष्प-गुच्छ से अभिनन्दन किया। अनेक फोटो लिए गए। टी.वी. के कैमरामैन और उनकी पूरी टीम उपस्थित थी। भव्य स्वागत हुआ। जिसका प्रसारण स्थानीय दूरदर्शन के सभी चैनलों के समाचारों में दिखाया गया।

बाहर मौसम में ठंडक थी। हमें बताया गया था कि अप्रैल से सितम्बर तक वहाँ सर्दी का मौसम रहता है। अपने-अपने हैंडबैग से सबने शाल-दुशाले निकाले और ओढ़ लिए। बाहर कला एवं संस्कृति मंत्रालय की गाड़ियाँ खड़ी थीं। फर्राटे से दौड़तीं हमारी गाड़ियाँ डेढ़ घंटे में रामायण सेंटर पहुँची। 'रामायण सेंटर' में अनेक कार्यकर्ता और मॉरीशस के अनेक साहित्यकार हमारे आगमन की प्रतीक्षा में खड़े थे। हम सब उनके आतिथ्य-सत्कार से गद्‌गद् हो गए। अधिकांश सदस्यों की आवास-व्यवस्था 'मनीषा' होटल में थी। हमारा होटल सम्मेलन-स्थल से 45 किलोमीटर दूर था। यहाँ होटलों का एक परिसर था। यह शहर की सीमा पर था। शहर की भीड़-भाड़ से अलग, बहुत ही शांत और मनोहारी जगह थी। अधिकांश सैलानी यहाँ आकर ठहरते हैं। यह बहुत ही खूबसूरत होटल था। चौबीस घंटे की थकावट के कारण आरामदायक बिस्तर पर जाते ही कब नींद आ गई पता ही नहीं चला।

अपने प्रवास के पहले दिन यानी 4 अगस्त को हम लंच के बाद 'आप्रवासी घाट' देखने गए। आप्रवासी घाट वह स्थल है जहाँ पर भारत से ही नहीं अन्य कई देशों से भी अनेक लोगों को 'बँधुआ मजदूर' के रूप में लाया गया था। सबसे पहले वे इसी स्थल पर उतरे थे। पोर्ट लुई का यह 'इमीग्रेशन स्क्वेयर' अब एक ऐतिहासिक स्थल है। वहाँ इनके चरण-चिह्न सुरक्षित हैं। प्रवेश करते ही लम्बी दीवार है। दीवार के पार घाट है।

2006 में यूनेस्को द्वारा यह आप्रवासी घाट विश्व की धरोहर-सूची में शमिल कर लिया गया। जो पर्यटकों को बीते इतिहास की गाथा सुनाता है। आप्रवासी नाम मॉरीशस में उन मजदूरों के लिए दिया गया जो लौटकर अपने देश में नहीं जा सके। अनुबंध के अनुसार पाँच वर्ष की अवधि बीतने पर इन्हें वापसी का किराया नहीं दिया गया। इनमें से अधिकांश लोग वहीं बसने के लिए बाध्य हो गए। ये वो प्रवासी थे जिन्हें नियति और हालात ने हमेशा-हमेशा के लिए आप्रवासी बना दिया। घाट से अभिप्राय है वह स्थान जहाँ पानी ज़मीन से मिलता है। हर स्थान का अपना इतिहास होता है जिससे उनकी स्थापना और नामों के बारे में ऐतिहासिक तथ्यात्मक जानकारी मिलती है। आप्रवासी घाट का यही इतिहास है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त और मॉरीशस के हिंदी लेखक श्री अभिमन्यु अनत की कविता की ये पंक्तियाँ, जो आप्रवासी घाट पर अंकित हैं, उसी इतिहास का परिचय देती हैं -

वह अनजान प्रवासी,
देश के अन्धे इतिहास ने न तो उसे देखा था
न ही बहरे इतिहास ने सुना था,
उसके चीत्कारों को।
जिसकी इस माटी पर बही थी पहली बूँद
पसीने की,
जिसने चट्टानों के बीच से हरियाली उगाई थी।
जो पहला गिरमिटिया इस माटी का बेटा,
जो मेरा भी अपना, तेरा भी अपना।

हमारी गाइड मनोहारी हमें घुमाते-घुमाते बता रही थीं कि उपनिवेशवाद के अंतर्गत 19वीं और 20वीं शताब्दी में यहाँ अनेक मजदूर लाए गए। सन् 1834 से 1926 ई. तक मॉरीशस में पहुँचे शर्तबंद मजदूरों की संख्या 4,54,000 थी। भारतीय गिरमिटियों का निकासी द्वार या पोर्ट या एम्बार्कमेंट डिपो था-मद्रास, पांडिचेरी, बांद्रा तथा कलकत्ता। अंग्रेजों के कब्जे में संसार के अनेक ऐसे टापू थे जो बंजर थे। इन टापुओं में खेती करने और उद्योग-धंधों के विकास के लिए अंग्रेजों को मजदूरों की जरूरत थी। जब भारत में अंग्रेजों के पैर जम गए तब उन लोगों ने इस देश की गरीब जनता को खासकर भोजपुरी क्षेत्र के निवासियों को जीविका देने का लालच देकर उनसे अनुबंध पर हस्ताक्षर कराये और उन्हें इन टापुओं पर ले गए। जहाज पर चढ़ाने से पूर्व संरक्षक उन्हें एक पास प्रदान करता था, जो टिन-टिकट या पहचान-पत्र होता था। यह या तो उसके गले में लटकाया जाता या बाजू पर बाँध दिया जाता था। ऐसे मजदूर गिरमिटिया कहलाते थे।

गिरमिट अंग्रेजी के एग्रिमेन्ट का अपभ्रंश रूप है। समुद्र पार मारीच देश में वे इसी प्रवासी डिपो पर आकर ठहरे। इन 'शर्तबंध' मजदूरों ने अपनी मेहनत से वहाँ की बंजर भूमि को उपजाऊ बनाया। पथरीली जमीन को काटकर-काटकर समतल किया। गिरमिटिया मजदूरों का काम था मेहनत करना, पसीना बहाना और स्वामीभक्ति निभाते रहना। यहाँ की हर चीज गोरे साहब की बपौती थी। घास-पात, नदी-नाले, पर्वत-ज़मीन हर वस्तु का स्वामी वही था। यहाँ के हर स्त्री-पुरुष का मालिक भी पूर्णतः वही होता। यह साहब को अधिकार प्राप्त था कि चाहे उन्हें सूली पर चढ़ा दे या उन्हें कुत्तों से नुचवाकर उनकी बोटी-बोटी करके उनके आगे डाल दें। तन और मन से ही नहीं दिमाग और आत्मा से भी वे उनके गुलाम थे। मालिक के लिए जीना, मालिक के लिए मरना, उनकी सेवा में हर समय खड़े रहना ही इनका नसीब था। कड़कती धूप में मालिक के कोड़े खाकर, बाँसों के प्रहार सहकर और सरदारों की गालियाँ सुनकर भी क्रोध को भीतर ही भीतर दबाकर चुप्पी साधे रहना इनका भाग्य बन चुका था। यह सहनशीलता उन्हें प्राप्त हुई थी अपने देश भारत और परिवार के बीच लौट जाने की अदम्य लालसा के फलस्वरूप।

अपनी नंगी पीठ पर कोड़ों की मार, जूते की नोंक की ठोकरों आदि अमानवीय शारीरिक यातनाओं को इन्होंने जिस ढाल के सहारे सहा, वह था इनका अपनी संस्कृति से प्रेम। जैसे ही बड़े गेट से हमने अंदर प्रवेश किया सामने एक पत्थर की दीवार थी जिस पर कुछ आप्रवासियों के चित्र और उनका पूरा इतिहास लिखा था। कितने प्रतिशत लोग किस-किस देश के हैं। सबसे ज्यादा संख्या भारत की थी। भारत में बिहार, बंगाल, कलकत्ता, उत्तर प्रदेश के मजदूर थे। उनमें भी प्रतिशत की दृष्टि से अधिकतम संख्या 67 प्रतिशत बिहार क्षेत्र के मजदूरों की थी। एक अगस्त 1834 ई. को कलकत्ता से पारा नामक जहाज भारतीय मज़दूरों को लेकर 'कलकत्ता से छूटल जहाज पवनिया धीरे चलाय'- कहता हुआ चला था। सुचिता रामदीन का इसी पटकथा पर वहाँ एक ऑडियो

विजुअल (प्रकाश/ध्वनि) कार्यक्रम का भी निर्माण हुआ है। कहते हैं कि इसकी प्रस्तुति देखकर दर्शकों की आँखों में आँसू आ जाते हैं। इसमें उत्तरी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के भोजपुरियों, गिरमिटियों, मज़दूरों की त्रासद यात्रा और आप्रवासी घाट पर उतरने से लेकर शुगर मिल तक पहुँचने की रुला देने वाली मार्मिक गाथा चित्रित है। अकाल और भुखमरी से पीड़ित अनपढ़ लोगों को सब्ज-बाग दिखाकर दलालों ने भरमाया। दिनों की यात्रा महीनों की यात्रा बन गई। भूख-प्यास और बीमारी में बिना दवा-दारू के कई यात्री दम तोड़ देते। उनके शवों को निर्ममता से पानी में फेंक दिया जाता। साथी दु:खी होकर कह उठते-'एकै कहत बानी कुदरत के खेला। हियाँ आदमी को मरने पर पानी में दफनावल जाता। अहोभाग हम लोग का।' जहाज की दुर्गम यात्रा और बीमारी की विकराल स्थिति के बावजूद 'मारीच' द्वीप पर पहुँचे लोगों की परेड कराई जाती। प्लांटर चुन-चुनकर स्वस्थ हट्टे-कट्टे लोगों को काम पर लगाता।

दीवार के सामने घाट था। इस घाट पर छोटे-बड़े पानी के अनेक पोत खड़े थे। हमारे साथी योगेश जी ने उनकी ओर देखकर हमें उनकी दर्द-भरी दास्तान को विस्तार से बतलाया। इसी तरह के किसी समुद्री जहाज में हमारे भारतीय भेड़-बकरियों की तरह ठूँसे जाकर इस धरती पर उतरे थे। वे गरीब भारतीय कुली या गिरमिट हो गए थे। बहुत कम पैसे और बहुत कम खाना पाकर यह पूरे बारह-तेरह घंटे काम करते। इन्हें रात के 2 बजे खींच कर ले जाया जाता और देर रात तक कड़ा परिश्रम कराया जाता। इन्हें गाड़ियों में पशु की जगह जोता जाता। इतना ही नहीं इन्हें जो भोजन दिया जाता वह पशुओं के भोजन से भी अधिक निकृष्ट होता। कीड़ों से भरा राशन दिया जाता। रहने के लिए भी पशुओं जैसे गंदे बाड़े दिए गए। 'मारीच देसवा जन्नत ह जन्नत' का सपना दिखा कर ले जाने वाले दलाल यहाँ मालिक से भी अधिक अधिकार जताते और यह अधिकार जहाज से ही शुरू हो गया था। जो दलाल कलकत्ता के बन्दरगाह पर उन्हें सप्रेम मिला था और जहाज में साथ ही सवार हुआ था, ज्यों ही जहाज पानी में खिसकता तो अपनी कोट में से लम्बी बेंत निकालकर अपने को जहाज का बादशाह साबित कर, वहीं से ही विरोध करने वाले पर बेंत बरसाने शुरू कर देता। दलाल के बाद शुरू हुए गोरों के अत्याचार। आधे पेट या कभी-कभी पूरे पेट भूखे रहकर ये पहाड़ खोद-खोदकर धरती को समतल बनाते। बीमार होने पर उचित देखभाल और दवा-दारू के बिना कई मजदूर बेमौत ही मर जाते। उन्हें अपने देश की मिट्टी भी नसीब नहीं होती। जो जीवित रहे वे अपमान और दुर्व्यवहार सहकर भी अपने देश नहीं लौट पाए क्योंकि उनका अनुबंध पाँच वर्ष का था। इन्हें मजबूरन मारीच देश की पथरीली जमीन के सीने को चीर-चीर कर पत्थरों को बाहर निकालने में उस अवधि को बिताना पड़ा। इस आशा में कि धन कमाकर अपने देश लौट सकें। अब वे उस घड़ी को कोसते जिस घड़ी वे मारीच देश के दलालों के बहकावे में आ गए।

गाइड ने हमें आप्रवासी घाट का हर स्थान दिखाया। उनके स्नान करने का खुला स्थान देखा। इस घाट पर खुले पाँच-सात हौज थे। जहाँ वे लोग स्नान करते थे, जैसे मनुष्य नहीं पशु हों। हमारे यहाँ पशुओं के स्नान के लिए ऐसे सीमेंट के खुले हौज घुड़शाला या गौशाला आदि में होते हैं। इस स्थान का नाम 'बाथिंग एरिया' था। इनके नहाने के घाट को दासों का घाट कहा जाता था। वहाँ गोरे कभी नहाने नहीं जाते थे। प्यास बुझाना तो दूर की बात थी। नहाने-तैरने

के लिए नदी की विशेष जगह को अपने वश में कर रखा था। मजदूर कहे जाने वाले लोग यदि भूल से भी उधर चले जाते तो चाबुक से उनकी पीठ छील दी जाती थी। उस घाट को 'साहब घाट' कहा जाता था। उस घाट पर ऐसा कुछ नहीं था, जिसे कोई चुराना चाहे, फिर भी उस घाट की पहरेदारी में दो-दो पहरेदार रात-दिन लगे रहते थे।

हमारी गाइड मनोहारी हिंदी अच्छी जानती थीं। एक-एक स्थान को न केवल हमें अच्छी तरह से दिखाया वरन् उसकी विस्तृत जानकारी भी दी। वह हमें आगे वहाँ ले गई जहाँ एक बड़ा हॉल था। जहाँ उन्हें मेडिकल सुविधाएँ दी जाती थीं। वहीं पर ही छोटे-मोटे ऑपरेशन करने की व्यवस्था की गई थी। इसका नाम 'हॉस्पिटल ब्लॉक' था। इसके अन्तर्गत सर्जरी-विभाग और जनरल वार्ड अलग-अलग हैं। इसके भीतर काफी मरम्मत की गई है। यह मॉरीशस का एक ऐतिहासिक स्थल है अत: इसके उचित रख-रखाव का पूरा प्रबंध किया जाता है, जो मॉरीशस सरकार के कला और संस्कृति मंत्रालय के अन्तर्गत आप्रवासी घाट-ट्रस्ट-फंड से होता है। आप्रवासी घाट-ट्रस्ट-फंड का अलग से शासकीय और तकनीकी विभाग है। मॉरीशस का यह पर्यटन-स्थल प्रात: नौ बजे से शाम चार बजे तक खुला रहता है। यहाँ हमेशा सरकारी गाइड रहते हैं जो बहुभाषा-विद् हैं। वे पर्यटकों को पूरा आप्रवासी घाट दिखाते हैं। हिंदी, अंग्रेजी अथवा ब्रोकन फ्रेंच में जैसा टूरिस्ट चाहें वे उसी भाषा में समझाते हैं।

यहीं घाट पर ही सबके आवास की अलग-अलग व्यवस्था थी। आप्रवासियों का शैड तथा उनका कुक-हाउस अलग था जहाँ उनका खाना बनता था। अफसरों के क्वार्टर तथा उनकी किचन अलग थी, जहाँ उनका स्पेशल खाना बनता था। 'सरदार' का क्वार्टर अलग था। ये सरदार भारत से श्रमिक मँगवा कर अंग्रेज मालिकों को देते थे। ये श्रमिक भारत ही नहीं अन्य देशों से भी होते थे। पोत के द्वारा पहुँचे सारे श्रमिक पहले दो दिन यहीं रहते थे। उनकी डॉक्टरी जाँच होती थी। पहचान-पत्रों के रूप में इन्हें यहाँ एक टिकट दिया जाता और खो जाने पर इन्हें अपने देश वापस नहीं जाने दिया जाता था। जिनके पहचान-पत्र खो गए वे वहीं के होकर रह गए यानी आप्रवासी।

मॉरीशसवासियों के लिए आप्रवासी घाट एक ऐतिहासिक स्थल ही नहीं वरन् एक पवित्र तीर्थ स्थल है, जिसमें उनके पूर्वज उतरे थे। जिनके पद-चिह्न उन्होंने आज भी सुरक्षित रखे हैं। वे उनके लिए पूज्य हैं।

अपने एक सप्ताह के इस प्रवास के दौरान हमने मॉरीशस के व्यावसायिक केन्द्र, धार्मिक-ऐतिहासिक स्थल, पर्वतमाला के मंजर, वाटर-फॉल आदि प्राकृतिक सौन्दर्य के अनेक पर्यटन स्थल देखे। नगर-भ्रमण किया, गाँव की झाँकी देखी, सर्वत्र यही पाया कि मॉरीशस मिली-जुली जातियों का, वर्णों का भूमंडलीकृत देश है किंतु यहाँ सब लोग साथ-साथ रहते, काम करते, खाते-पीते और घूमते-फिरते हैं। वहाँ के लोग इस मिश्रित सभ्यता और संस्कृति के इतने अभ्यस्त हैं कि कोई असहजता महसूस नहीं करता। चाहे मॉरीशस विभिन्न जातियों और विविध संस्कृतियों का समास है किंतु लघु भारत मॉरीशस की इस जमीन पर अपनी भारतीय संस्कृति और सभ्यता को सर्वाधिक फलते-फूलते देखकर हमें सुखद आनंद हुआ।

एन.डी. 57, पीतमपुरा,
दिल्ली-110034
मो. - 9868735123

प्रवासी कलम से

(कविता)

धीरे-धीरे

- अनिल पुरोहित



जन्म - 1966।
जन्म स्थान - कटक, उड़ीसा।
शिक्षा - सी.ए.।
रचनाएँ - काव्य विधा में सात पुस्तकें प्रकाशित।

इंतजार रहता-हर सुबह
एक नए मोड़ का।
सुहाना, स्वप्निल, रंगीन
पर धीरे-धीरे, बहता समय
कोई मोड़ इसमें नहीं।
कभी-कभी देखता
मुड़ कर पीछे
दिख रहे मोड़-जाने कितने
पता नहीं चला-इस इंतजार में।

सब कुछ सिखा देता-समय,
अपनी इस धीमी चाल में
पर अनभिज्ञ प्रकृति सारी।
कब बीज से बस गया यह घना जंगल
कब रेत में ढल गया यह विशाल पर्वत
कब खिलखिलाता बचपन,
रुखसती को बेकरार।

भरी हुई संघर्ष से-प्रकृति सारी
पर चाल समय की, भर देती सहनशक्ति
समय की धीमी चोट
सब कुछ बदल देने की अद्भुत शक्ति
भरती रही जीवन में।

सुहाना बनाता रहा समय
खिलखिलाता-सूरज-पार क्षितिज के
शायद उग रहा-या डूब रहा, धीरे-धीरे
पर शिकन कोई नहीं।

सागर किनारे

जाने कब ढलने लगा दिन
टहलते इस सागर किनारे।
सूखी-गीली रेत पर
हौले रखते पाँव
हल्की चुभन इनकी
गुदगुदाहट-सी भर गई
सारे शरीरी में।

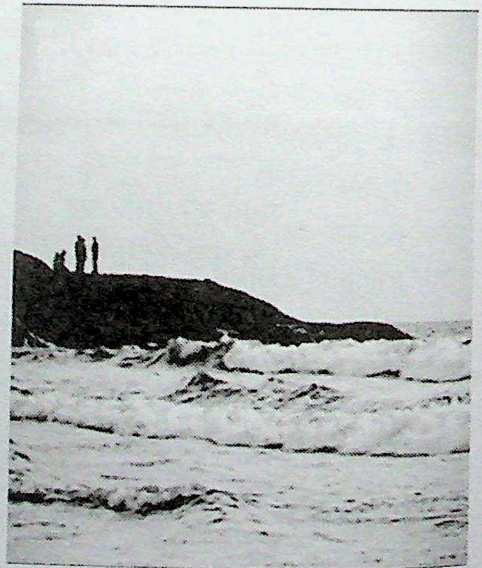
कहीं दूर हौले से उठती एक लहर
किनारे को आते मचलती
पीछे-पीछे उसके और दो-चार
हौले से बढ़तीं गरजतीं-लपकतीं
देखता रहता यह दौर सिलसिलेवार
नहीं रुकता कारवाँ लहरों का
किनारे पर रेत संग
खिलखिलाते लिपटते जाना
फिर क्षण भर में बिलबिलाते-से
वापस सागर में ओझल हो जाना।

यही लौटती लहरें-आगे सागर में जा
हो जाती हैं पूर्ण-बनकर एक धार
जाने कितनी दूर-गुँथ जातीं
एक-दूसरी से
क्षितिज के इस पार से उस पार।
दूर देख रहा-ढलता सूरज
लालिमा अपनी सागर में घोलता
रात के आने का आभास जगाता
सर्द हवा सारे जिस्म को छू जाती
सिहरन-सी एक पैदा कर रही
शायद कुछ दूर और चलूँ

फिर सिर्फ रह जाएगा
लहरों के रेत से मिलन का शोर
चुपचाप गुम तो-गुम हो जाएँगी लहरें
सागर की गोद में-धारा एक बन।

चाँदनी में नहाएगा सागर
सफेदी की चादर ओढ़
हवाएँ सर्द लहराएँगी चादर
झूमती आएँगी लहरों पर लहर
मिटाने पैरों के निशान
शोर ही शोर
एक सागर के किनारे
एक मन की ओर।

अपार्टमेंट 808, 320, डिक्सन रोड,
एटोबीकोक, टोरंटो
ओ.एन. एम.जी.आर. 158, कनाडा
मो. -001-416-249-5696



व्यंग

साब का मूड

- अरुण अर्णव खरे



जन्म - 24 मई 1956।
शिक्षा - इंजीनियरिंग में स्नातक।
रचनाएँ - दो काव्य संग्रह सहित दस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - गुफ़्तगू सम्मान सहित आठ सम्मान।

मूड-एक ऐसा शब्द है जिससे हम सभी का वास्ता एक बार, दो बार नहीं अपितु अनेक बार पड़ा होगा और इसके अनुभव भी कभी सुखद, कभी दुखद तो कभी कष्टप्रद हुए होंगे। यदि आप अफसर हैं या रहे हैं तो यह बात कभी न कभी, किसी न किसी माध्यम से आपके कानों तक जरूर पहुँची होगी जब आपके मातहतों ने या आपसे काम करवाने आए लोगों ने आपके कमरे (सॉरी कक्ष) के बाहर स्टूल पर उनींदे से बैठे उस शख्स से यह पूछा होगा कि 'साब का मूड कैसा है'? यह ऐसा वाक्यांश है जिससे व्यक्ति को अपने साहब होने के महत्व का पता चलता रहता है और 'साब' बने रहने के लिए ऊर्जा की सतत् आपूर्ति होती रहती है।

ऑफिस के कर्मचारियों को 'साब' के मूड के बारे में जानकारी किसी से लेनी नहीं पड़ती, वे साहब के हाव-भाव से ही समझ जाते हैं कि आज 'साब' का मूड कैसा है। यदि 'साब' ने ऑफिस में प्रवेश करते समय चपरासी की नमस्ते का उत्तर दे दिया तो कर्मचारी स्वमेव समझ जाते हैं कि 'साब' अच्छे मूड में हैं और उनसे उलझी हुई फाइलों में आसानी से दस्तखत कराए जा सकते हैं। जिस दिन 'साब' तेजी से अपने कक्ष में प्रवेश करते ही महिला स्टेनो को डिक्टेशन के लिए बुला लेते हैं और कमरे के बाहर का लाल बल्ब जल उठता है तो सबको पता चल जाता है कि आज मेमसाब ने 'साब' का मूड ऑफ कर दिया है। इसकी पुष्टि होने में भी ज्यादा देर नहीं लगती जब एक-डेढ घंटे की डिक्टेशन के बाद भी स्टेनो को कोई पत्र या ड्राफ्ट, टाइप करते किसी ने नहीं देखा होता। इस दिन कर्मचारी 'अफसर की अगाड़ी और घोड़े की पिछाड़ी भली नहीं होती' कहावत को याद करते हुए 'साब' से सुरक्षित दूरी बना कर रखने में अपना हित देखते हैं।

कर्मचारियों को 'साब' का मूड भाँप कर चलना, नौकरी के पहले ही दिन सीनियर कर्मचारी सिखा देते हैं। उसे बताया जाता है यदि ऑफिस में अपनी अहमियत बना कर रखनी है तो 'बॉस इज आलवेज राइट' के अलिखित लेकिन प्रशासनिक हलकों में आई.एस.ओ. मापदण्ड सरीखे सर्टीफाइड फार्मूले का पालन जरूरी है। 'साब' यदि गुस्से में कभी गधा, बेवकूफ भी बोल दें तो 'यस सर' कहकर मान लेना चाहिए। जो इतनी सहनशक्ति का परिचय दे पाते हैं, वे शीघ्र ही 'साब' की गुडबुक में शामिल हो जाते हैं और गोपनीय किसिम की

फाइलों तक उनकी पहुँच होने लगती है। धीरे-धीरे 'साब' के गोपनीय कार्यों के राजदार भी हो जाते हैं।

कर्मचारियों को 'साब' के मूड के अनुसार काम करने की आदत डालनी पड़ती है। उनके पास 'आज काम का मूड नहीं है', कहने की सुविधा नहीं होती। यह सुविधा केवल 'साब' को प्राप्त होती है। वे जब मन हो, वक्त बेवक्त, सुबह-शाम, छुट्टीवाले दिन भी कर्मचारी को फाइल लेकर अपने बँगले पर बुला कर काम पर लगा सकते हैं। हर अफसर को काम करने वाले लोग पसंद होते हैं लेकिन जो काम करने का केवल दिखावा करते हैं, वे और भी ज्यादा पसंद होते हैं। हर कार्यालय में ऐसे एक-दो कामकाजी निखट्टू कर्मचारी होते हैं जो 'साब' का मूड रीफ्रेश रखने की तमाम भौतिक, रासायनिक और जीव विज्ञानी विधियों से परिचित होते हैं। ऐसे बेकायदे के लोग अनेक मौकों पर बड़े कायदे के सिद्ध होते हैं इसलिए 'साब' के चहेते बन जाते हैं।

कभी-कभी पूरी सावधानी के बावजूद 'साब' का मूड पढ़ने में मौसम अथवा ज्योतिषी की भविष्यवाणी सरीखी गफलत भी हो जाती है। वैसे भी अफसर के मूड का कोई भरोसा नहीं होता। अफसर होने के नाते उसे छोटी-छोटी बात पर उखड़ने की छूट होती है। जब उसे लगने लगता है कि कर्मचारी उसकी शराफत का फायदा उठाने लगे हैं तो वह किसी को टारगेट बनाकर किसी पर भी उखड़ जाता है। उखड़ते समय उसे इतना ध्यान तो रहता ही है कि जिस पर वह उखड़ रहा है, वह कहीं कर्मचारी नेता तो नहीं है।

बाहरी तौर पर कर्मचारी नेता और 'साब' की कभी पटरी नहीं बैठती लेकिन 'वन-टू-वन' होने का मौका मिलते ही नेता जी पालतू बिल्ली की तरह पेश आते हैं और 'साब' सर्वशक्तिमान दाता की तरह। वन-टू-वन मीटिंग समाप्त होने पर दोनों ही अपने-अपने कारणों से खुश नजर आते हैं। एक साब का मूड ठिकाने पर लाने का दावा करता है और दूसरा नेता जी का मूड ठिकाने लगाने का। किसने किसको ठगा, ये बाहर वाले समझ ही नहीं पाते, जबकि दरअसल ठगे वही जाते हैं।

डी-1/35 दानिश नगर,
होशंगाबाद रोड, भोपाल - 462026 (म.प्र.)
मो. - 09893007744

विशेष अनुरोध

सम्मानित सदस्यों से विनम्र अनुरोध है कि सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, आर.टी.जी.एस / एन.ई.एफ.टी, आदि ई-बैंकिंग माध्यमों से भेजने के पश्चात् एक पोस्ट-कार्ड पर अपना पूरा नाम-पता, पिन कोड नम्बर सहित लिखकर 'अक्षरा' कार्यालय को अवश्य सूचित करें। ताकि पत्रिका प्रेषित करने / मिलने में होने वाली असुविधा से बचा जा सके।

बैंक, खाता संख्या निम्नवत् है-

Ac/ No. 50413818696, IFSC-ALLA 0212241
इलाहाबाद बैंक, टी.टी.टी. आई शाखा, भोपाल

कोरोना काल में उपजे व्यंग्य

- अरविंद पाठक

दर्द न जाने कोय

युवक ने कहा-'अंकल! लॉक डाउन के बाद आप ज्यादा स्मार्ट दिखने लगे हैं।

अस्सी वर्षीय वृद्ध- लॉक अप में बीस वर्षों से हूँ। पेंशन-डे पर तुम्हारी आंटी-खीर-पुड़ी खिलाकर, बैंक साथ जाकर पेंशन हथिया लेती है। फिर अगले पेंशन-डे/खीर-पुड़ी का इंतजार, हमारा दर्द न जाने कोय!

फादर्स-डे

पिता - रोजाना की तरह आज भी तुमने हमारे (माता-पिता) चरण स्पर्श किये। बाद में मुझे गिफ्ट भी दी।

बेटा - आज पितृ दिवस है।

पिता - सुनते ही बाप ने गाली बकते हुए जूते से बेटे की पूजा कर दी। कहा-मेरे मरने के पहले ही पितृ दिवस मना रहा है, नामाकूल!

आपदा को अवसर में बदल दिया

वरिष्ठ नागरिक पति को पचास साल पहले हुई शादी के सूट में देखकर पत्नी बोली-हमारे पापा के दिए सूट में आज बहुत जँच रहे हो।

सुनकर पति बोला-कोरोना और लॉक डाउन ने आपदा को अवसर में बदल दिया।

पति बने महाराजा

पत्नियों द्वारा बनाई स्पेशल डिश एक-दूसरे को दिखा पत्नियों ने खुद को क्वीन मान ऑन लाइन वर्ल्ड पिकनिक-डे मनाया।

पतियों ने एअर इंडिया के महाराजा की मुद्रा में ड्यूटी बजाई।

डी-11 गीतांजली काम्प्लेक्स
साउथ टी.टी. नगर,
भोपाल-462003 (म.प्र.)

कहानी

मी मांछा

- शशि कांडपाल



जन्म - 1 सितंबर।
जन्म स्थान - अल्मोड़ा (उ.प्र.)
शिक्षा - स्नातक।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिका में रचना प्रकाशित।

नागालैंड खूबसूरत वादियों से घिरा भारत का दर्शनीय उत्तर-पूर्वी प्रदेश है। बात उन दिनों की है जब असम का बोडो आंदोलन चरम पर था और नागालैंड अपने ही माओवादियों के आतंक में जी रहा था। खुद में खास न तो खेती है न उद्योग। अनाज, फल, सब्जियाँ तक दूसरे प्रदेशों से आती हैं, तब शहरी जीवन चल पाता है। असम से होता हुआ अपर असम तक आतंक का साम्राज्य अन्य प्रदेशों से आने वाले काम काजियों को तो हतोत्साहित करता ही है लेकिन कुछ लोगों के लिए ये स्थितियाँ उनके स्वार्थ संधान में काफी उर्वरक साबित होती हैं। हथियार बनाना, बेचना, ठीक ठिकाने पर पहुँचाना, फायदे का सौदा होता है। घर-घर माओवादियों को शरण देकर भी पैसे कमाए जाते। उगाही की जाती। न्याय देने के नाम पर झगड़ों को सुल्टाया जाता और दोनों पक्षों से पैसे लिए जाते। व्यापार कर रहे मारवाड़ी हर समय अपनी जान और सुरक्षा को लेकर चिंतित रहते कि पता नहीं क्या फरमान आ जाये और शहर छोड़ना पड़े।

इन सबके बीच एक और धंधा था जो खूब फल-फूल रहा था, वह था धर्म का धंधा! धर्मांतरण का धंधा जिसमें ईसाई मिशनरियों की बड़ी मात्रा में भागीदारी होती। जहाँ स्थितियाँ विकट होतीं, विकास कोसों दूर होता, ग्रामीण, आधुनिक युग से अनजान होते, चिकित्सा सुविधाओं का अभाव होता, वहाँ ये अपना लाव-लश्कर लेकर पहुँच जाते। तमाम कठिनाइयों के बीच ये कुछ ही महीनों में वहाँ अपनी जड़ें जमा चुके होते। अस्पताल, छोटे-मोटे रोजगारों की ट्रेनिंग, दवाइयों, दलिया, दूध पावडर के साथ गाँव-गाँव घूमकर सारी जनजातियों को ईसाइयत के प्रति आकर्षित करते। समाजसेवा अवश्य होती लेकिन धर्म भी सधता जिसकी बाकायदा हर रविवार को समीक्षा होती।

इन सब कामों में भोले, मासूम चेहरे ज्यादा असरदार होते। घावों पर मरहम लगाते, बीमारों की तीमारदारी में रातदिन एक करके लोगों के दिल में बस जाना उनका ध्येय होता। आखिर जो मरीज एक पैरासिटामोल की कमी से महीनों बीमार रहे, बच्चे दो अक्षर न पढ़ पाएँ, सरकारें घोर उपेक्षा करें तो ये लोग देवदूत बनकर उनके लिए नया जीवन लाते। आखिर जीना सबसे बड़ा धर्म है और कोई इस जीवन को अच्छे से जीने में मदद कर दे तो उसके धर्म के रास्ते पर चलने में संकोच कैसा? ये तो

मानवता सेवार्थ धर्म है-ऐसा तर्क होता।

इन सारे कामों का दारोमदार 'सिस्टर्स और ब्रदर्स' पर रहता। थोड़े सीनियर ब्रदर 'फादर' कहलाते और कोई-कोई सिस्टर 'मदर' की पदवी तक ही पहुँच पातीं। मदर जनरल तो सौभाग्य से मिलता।

दिन भर बच्चों का एक स्कूल भी चलता जिसका संचालन सिस्टर पुष्पा की जिम्मेदारी थी। वे एक बहुत खूबसूरत, नाजुक सी युवती थीं। एकदम आयरिश नन लगतीं। उनका बेज़ कलर का कॉलर और उनके चेहरे की सीमारेखा घुलमिल जाती। कभी-कभी रंगीन शर्बत पीतीं तो शर्बत गले से नीचे उतरता साफ दिखता। लोग जैसे ही उनकी सुंदरता की तारीफ करते वे आँखें मूँद अपने बचपन, खासकर उस दिन में पहुँच जातीं जब उन्हें, उनके पिता मंगलोर की मिशनरी में छोड़ गए थे। वहाँ से तुरंत उन्हें यहाँ 'नॉर्थ ईस्ट' भेज दिया गया था ताकि कोंकणी जड़ें काटी जा सकें।

उम्र कोई बारह साल रही होगी। वे अपने वेल से ढके बालों पर बाहर से हाथ फिराकर उनका भूरा सुनहरा रंग याद करतीं कि कैसे माँ ने रोते-रोते उनकी दो मोटी चोटियाँ गूँथी थीं। अपने हाथ से दसियों व्यंजन बनाये थे और सिसकियों के बीच खिलाये थे। जब वे मिशनरी पहुँची तो हाथ में कंगन और पैरों में पायल हिलने-डुलने पर रुनझुन कर रहे थे। सीने से अपनी नानी की दी हुई बड़ी सी गुड़िया चिपकाए जब वे मदर जनरल के सामने लाई गईं तो उन्हें बिल्कुल डर नहीं लगा क्योंकि अप्पा साथ थे। वे बचपन से सुनती आईं थीं कि वे जीसस की अमानत हैं। उन्हें जीने के एवज में प्रभु की सेवा करनी होगी क्योंकि वे अपने पहले के चार मृत भाइयों के बाद जी गईं थीं, सो उनपर प्रभु का हक था। लेकिन उन्हें ये नहीं पता था कि अपना घर, अप्पा, अम्मा, अपनी बकरियाँ, कजली गाय और गाँव का झरना छोड़कर हमेशा के लिए जाना होगा!

करीब एक घंटे की लिखा-पढ़ी के पश्चात् जब अप्पा जाने लगे तो वे भी बछिया सी पीछे हो लीं। पिता ने आँसू पोंछे और तेज चाल से जाने लगे। पुष्पा ने भी दौड़ लगा दी लेकिन उसके हाथों, पैरों, गर्दन यहाँ तक कि बालों पर पड़ते सख्त हाथों ने जीवन की हकीकत समझा दी। इतनी हताशा हुई कि वे बेहोश होकर गिर पड़ीं। जब सुबह होश में आईं तो बाल कटकर सुनहरे गुच्छों में कानों तक झूल रहे थे। कंगन, पायल, कान की बालियाँ सब रजिस्टर में दर्ज होकर अलमारी में कहीं बन्द थे। गले लगकर रोने का एकमात्र सहारा गुड़िया कहाँ है? चीख-चीख कर पूछने पर भी शमशानी सन्नाटा छाया रहा। वे खुद रोतीं, खुद चुप होतीं बड़ी होने लगीं और मिशनरी के कायदे-कानूनों में रहने लगीं।

गुजरते समय के साथ घाव भरने लगे। जब धर्म को मानव से न जोड़ कर आस्था, इज्जत और गर्व से जोड़ दिया जाता है तो मानवीय भावनाएँ, इंसान की सांसारिक खुशियों का दमन फौरी तौर पर भले हो जाता हो लेकिन क्या सच में मानव अपनी संवेदनाओं, प्रकृति प्रदत्त भावनाओं से निवृत्त हो जाता है? क्या अपने लिए छोड़ सिर्फ समाज,धर्म के लिए जीने लगता है? धर्म गुरु, धर्म स्थान या आश्रम उनकी ऊर्जा का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए नहीं करते?

पुष्पा जैसी कई कोमल कन्याएँ या तो

गरीबी से या किसी प्रतिज्ञा के तहत साध्वी बनाई जाती रही हैं। बच्चियों को बेघर कर देना, माँ-पिता, परिवार के प्यार से वंचित कर जिंदगी भर खाना, कपड़ा, दवाई के एवज में धर्म बंदी बना लेना, कितना क्रूरतम कृत्य है इसके बारे में कोई नहीं सोचता।

पुष्पा सुदूर नॉर्थ ईस्ट के गाँव-गाँव जाती, ड्रायवर तथा एक और जूनियर मिलता जिसके साथ दौरे होते। नए कीर्तिमान गढ़ती, प्राथमिक विद्यालय, दवाईखाना, चर्च बनवाती, उनके चलने की व्यवस्था सुनिश्चित करती, सिस्टर पुष्पा ख्याति प्राप्त कर रही थी। दूर कोंकण में बैठे माता-पिता गर्व से फूले न समाते जब वहाँ के चर्च उनकी बेटी की वजह से उन्हें सम्मानित करते। वक्त और पुष्पा दोनों व्यस्त थे कि एक दिन नियति/प्रकृति अपना खेल खेल ही गई।

धर्म आपको भावना विहीन बनाने की ट्रेनिंग देता है लेकिन प्रेम की कोपलों को फूटने से रोकना किसके बस में है? पुष्पा बेहद छोटी बातों के लिए भी विमल के पास दौड़ी जाती। सारे निर्णय खुद लेने वाली ने अपने सारे निर्णय फादर पर छोड़ दिये। काम की बात पर घंटों उन्हें घूरते रहना, बात करते समय सट कर चलना, काम हो जाने के बाद भी ऑफिस छोड़ने में वक्त लगाना आखिर सबकी आँखों में खटकने लगा। फादर विमल खुद को बेहद सुलझा मानते थे लेकिन इस उलझन को सुलझाना उनके बस में भी नहीं था।...

सिस्टर पुष्पा का जन्मदिन काफी धूम धाम से मनाया जाना था। वे तीस साल पूरे कर रही थीं। वे नागालैंड, मणिपुर के किसी भी इलाके में हों, जन्मदिन के मौके पर दीमापुर लौट ही आतीं। आखिर एक ठिकाना, घर का एहसास वहीं जो मिलता था। केम्पस में चलने वाला स्कूल, चेपल, हॉस्टल सब सजाया जाता और घर आई बेटी सी सिस्टर पुष्पा सब जगह चहक-चहक कर घूमती, शुभकामनायें बटोरती, खुश होती। उसका कमरा तमाम ग्रीटिंग कार्ड्स से भरा होता और बिस्तर पर जंगली, बाग से तोड़े गए फूलों का अंबार! साथ में होता एक नया भूरे कलर का 'वेल' (सर ढकने वाला) और 'नन वाला गाउन' (हैबिट) जिसे साथ रखना मदर 'रोजरी' न भूलतीं। दिन भर जब केक खाते, शुभकामनायें लेते थक कर देर शाम बाद सिस्टर अपने कमरे में लौटी तो मदर मार्था को अपने कमरे में इंतजार करते पाया। अमूमन ये उनका ऑफिस में बैठने का टाइम होता था सो सिस्टर पुष्पा उन्हें वहाँ पा थोड़ा झिझक-सी गईं।

मदर आप यहाँ? मुझे बुला लेतीं, मैं आ जाती।

'माय चाइल्ड मुझे पता है तुम आ जातीं लेकिन काम इतना खास था कि सबके सामने कह नहीं सकती थी।'

आशंकित सी हो सिस्टर पुष्पा ने कहा, 'मदर आप मुझसे कुछ भी कह सकती हैं, आपको पता है, मैं आपको अपनी सगी माँ ही मानती हूँ।'

'माय चाइल्ड पुष्पा! प्रभु ने हम दोनों को मिलाया उसका शुक्रिया। तुम एक बहुत अच्छी येशु की बेटी हो और अपने काम को बहुत अच्छे से कर रही हो। लेकिन मेरे पास तुम्हारी कुछ अमानत है जिसे मैं लौटाना चाहती हूँ ताकि तुम अपने हाथों से उसका जिस तरह चाहो निस्तारण करो।'

उत्सुक, किंकर्तव्यविमूढ़ सी पुष्पा अपने दिमाग पर जोर डालने लगी कि ऐसा क्या है जो मैंने मदर को सँभालने के लिए दिया था!

मदर ने अपनी हेबिट की जेब से पुराने कपड़े में लिपटी एक छोटी-सी पोटली उसके हाथ में धर दी, उसके माथे को चूमते हुए 'गॉड ब्लेस यू कहा' और तीर की तरह बाहर निकल गईं मानो वे यह काम करने के बाद पुष्पा की प्रतिक्रिया देखना न चाहती हों।

पुष्पा दिन भर की थकान से चूर अब आरामदायक कपड़ों में रहना चाहती थी सो नहाकर आने के बाद उसने जब पोटली खोली तो उसे तेज झटका लगा। उसने उछल कर कमरे के किवाड़ बंद किए और आँखें फाड़ कर उन चीजों को देखने लगी। छोटी-छोटी चूड़ियाँ जिनमें चार सोने की भी थीं, छमछमाती पायल जो समय के साथ काली पड़ गई थीं, कानों की कोंकणी गठन की बालियाँ, गले में पहनी जाने वाली मोतियों की मालाएँ जिनके तागे अब टूटने को तैयार थे। उसे वह दर्द फिर से टीस गया। उन चीजों को सीने से लगाकर हिलक-हिलक कर रोई। आखिर सोचने लगी कि इन सबको दान कर दूँगी। गठरी लपेट किनारे की और सोने से पूर्व की प्रार्थना करने लगी।

नींद में वही चीत्कार, पिता का पीठ पल्टा कर चले जाना, माँ का बस स्टेशन तक रोते हुए छोड़ने आना, गाँव वालों का दोनों हाथों से दूर से आशीष देना, उसका हृदय मथने लगा। अब वे जब भी गाहे-बगाहे गाँव जाती हैं तो लोग उल्टा उसका आशीर्वाद लेते हैं, उसकी इज्जत करते हैं लेकिन उससे बेटी जैसा स्नेह नहीं जताते। बचपन उसकी आँखों से गर्म आँसू बन बह निकला। उसने अँधेरे में पोटली टटोली और चूड़ियाँ टोह कर हाथों में डालने की कोशिश की तो नाकाम रही, माला गले में डालने की कोशिश में टूट कर बिखर गई। पायल भी छोटी पढ़ गई थीं लेकिन ये क्या? कान की बुंदकियों ने धोखा नहीं दिया, कान के छेद अभी भी भरे नहीं थे बिल्कुल बचपन के घावों की तरह। वे बालियाँ पहनते ही पुष्पा को गहरी नींद आने लगी। हालाँकि वे खुद को शीशे में देखना चाहती थीं लेकिन कड़े नियमों के अधीन बत्ती जलाकर शीशे तक जाना मुफीद न था सो कानों को हाथ लगा सालों बाद चैन से सो गईं।

सुबह जल्दी उठ शीशे तक गईं तो खुद को देख आश्चर्य हुआ। वह इतनी प्यारी! सिर्फ एक सोने का टुकड़ा उसे इतना कैसे दमका सकता है? लेकिन वह थी ही कोंकणी खूबसूरत बाला जो कि नन के रूप में सामान्य सी दिखती। आज उसे एक नया अनुभव हुआ था कि वह तो एक सुंदर नारी भी है। उसके पास खुद को निहारने का ज्यादा समय न था। चैपल जाने से पहले सारी चीजें ठीक से सँभालनी भी थीं, मोती बटोर, पोटली बाँध किसी कोने में रख, उसने सब भूल जाना चाहा लेकिन कानों में दमकती बलियों वाली छवि से उसे छुटकारा न मिला।

पोटली को फिर न खोलने की कसम खाते हुए पुष्पा ने खुद को काम में झोंक दिया।

उसे कोहिमा का चार्ज मिल चुका था और स्टाफ भी। क्योंकि प्रोजेक्ट बड़ा था और इलाज खतरनाक सो समय-समय पर फादर्स भी मदद करने जाते। उन्हीं में एक फादर विमल जो कि बहुत सौम्य, काले और लंबे कद के थे अस्पताल का काम देखने आए। सुदूर अकेले में अपनी बोली भाषा वाला इंसान यूँ ही प्यारा लगता है फिर ये तो 'रेवरेंट फादर विमल' थे जिन्हें सबका आदर, स्नेह मिलता था। अपनी बालियों वाली छवि में डूबी पुष्पा कब उनको हिसाब देते-देते उनके प्यार में डूब गईं खुद विमल भी न जान सके।

धर्म आपको भावना विहीन बनाने की ट्रेनिंग देता है लेकिन प्रेम की कोपलों को फूटने से रोकना किसके बस में है? पुष्पा बेहद छोटी बातों के लिए भी विमल के पास दौड़ी जाती। सारे निर्णय खुद लेने वाली ने अपने सारे निर्णय फादर पर छोड़ दिये। काम की बात पर घंटों उन्हें घूरते रहना, बात करते समय सट कर चलना, काम हो जाने के बाद भी ऑफिस छोड़ने में वक्त लगाना आखिर सबकी आँखों में खटकने लगा। फादर विमल खुद को बेहद सुलझा मानते थे लेकिन इस उलझन को सुलझाना उनके बस में भी नहीं था। आखिर एक दिन उन्होंने साफ बात करने की ठानी और लंच पर न्योता दिया।

पुष्पा तब तक दीमापुर जाकर, अपनी कसम को दरकिनार कर उस पोटली को उठा लाई थीं। लंच के मौके पर वही बालियाँ और चमका कर कानों में पहन आयी थीं। खाने की मेज पर हाथ बार-बार कान तक ले जाकर कुछ छुपाते, कुछ दिखाने की कोशिश में लगी रहीं। फादर ऐसे कई केसेज सुन चुके थे। जब कर्तव्य पर भावनाएँ भारी पड़ गई थीं लेकिन यहाँ तो वही चपेट में थे और उहापोह में भी। आखिर मनुष्य ने मानुषी का साथ देना स्वीकार किया ताकि मन की बात बाहर आ सके और शायद सुलझ भी जाए।

'सिस्टर पुष्पा क्या आप मुझे कुछ दिखाना चाहती हैं? मैं कुछ चमकती चीज बार-बार देख रहा हूँ। कहीं ये मेरी गलतफहमी तो नहीं?'

जरा सी ऊष्मा ने पुष्पा के जी को पिघला दिया और उसने बचपन से लेकर अभी तक की सारी कहानी विमल को सुना दी। विमल द्रवित तो हुए लेकिन ये तो हर एक की कहानी है। सब यहाँ किसी न किसी कारण से आये हैं, विमल ने भरपेट अन्न मिशनरी में आकर ही खाया था सो अपनी गरीबी को कैसे भुला सकते थे। साथ में मिशनरी की मेहरबानियों को भूल यदि हर इंसान यूँ ही भावुक होता रहा तो हमारे मिशन का क्या होगा? हमारे धर्म प्रचार और विदेशों से मिलने वाले अनुदान का क्या होगा? तमाम उलझनों के बीच दोनों खाना खाने की औपचारिकता निभाते रहे और अपने-अपने रास्तों को मजबूत करने चल दिये।

एक सुबह जब सिस्टर पुष्पा साइट पर पहुँची तो फादर विमल नहीं थे। वे उन्हें देखकर जीना सीख गईं थीं सो उन्हें न पाकर बावली सी हो सबसे पूछा-'फादर कहाँ हैं?'

प्रश्न का उत्तर किसी को नहीं मालूम था।

अंततः हॉस्टल जा पहुँचीं तो पता चला फादर कई दिनों से यहाँ से अपना ट्रांसफर माँग रहे थे। कल ही ऑर्डर आया और वे सुबह चले गए।

सिस्टर जीप में जा बैठीं और नीचे जाने वाले रास्तों पर जीप दौड़ाने को कहा। सबने समझाया कि फादर तो चले गए और कहाँ गए ये भी नहीं पता तो कैसे ढूँढ़ सकते हैं? जल्द ही कोई उनकी जगह पर आ जाएगा तब

आप अपनी समस्या बताना।

सिस्टर पुष्पा अपमानित, निष्प्राण सी कुर्सी पर दिन भर निढाल पड़ी रहीं। उनकी मनोदशा कोई नहीं समझ सकता था क्योंकि वे सबकी नजर में एक नारी न होकर एक दैवीय शक्ति से भरपूर ईशु की सेविका 'सिस्टर पुष्पा' थीं। जिसे ईसाई धर्म को जन-जन तक फैलाना था, रोते हुओं के आँसू पोंछने थे लेकिन उसके खुद के आसुओं की कोई जगह नहीं थी। काम का ब्योरा देना था और सबको ब्लेस करना होता था। यदि इसी गति से काम करती रहीं तो एक दिन रोम जाने और पोप के हाथों सम्मान भी मिल सकता था। यही तो अंतिम इच्छा होती है कि सम्मान लेते हुए तस्वीर मिशनरी के ऑफिस में टँगी हो, उसमें कितनी पुष्पा, मार्था, जिनेलिया ने खुद को कुर्बान किया, क्या फर्क पड़ता है?

रात हो चुकी थी, ड्राइवर जीप के साथ प्रतीक्षा में था ताकि सिस्टर को मुकाम तक छोड़ सके। उसके कई चक्कर लगाने के बाद सिस्टर को एहसास हुआ कि शाम हो चुकी है। वे नि:शब्द सी जीप की अगली सीट में बैठ गईं और मार्केट की तरफ चलने का इशारा किया। रास्ते में लोग उन्हें विश कर रहे थे, जीप हिचकोले खा रही थी लेकिन वे किसी और दुनिया में खोईं अपने ख्यालों में गुम थीं। मार्केट में उन्होंने कुछ खरीदारी की और पैकेट गोद में लेकर घर चली आयीं।

सुबह कोहिमा की पहाड़ी की तरफ आते-जाते लोगों ने एक साड़ी सा कपड़ा झाड़ियों में लहराता देखा और उसके साथ एक स्त्री की लाश भी! स्त्री बहुत खूबसूरत, हाथों में चूड़ियाँ, माथे पर बड़ी सी बिंदी और गले में कई मालाएँ, कानों में वही चमकती बालियाँ। हवा की तरह बात फैली और स्थानीय लोगों ने मुश्किल से पहचाना कि ये सिस्टर पुष्पा हैं, इतने लंबे बाल! इतनी गोरी काया!

आनन-फानन मदर को बुलाया गया। बात को सँभालते हुए 'मानसिक रोगी' करार दिया गया और लानत के साथ सारा किस्सा सुनते हुए मदर ने वहीं कोहिमा के बेगाने लोगों के बीच सिस्टर को दफनाने का निर्णय लिया।

कुछ दिन बाद 'फादर विमल' फिर से कार्यभार सँभालने पहुँच गए या कहें उन्होंने खुद वहाँ जाने की इच्छा जाहिर की जिसे तुरंत मान लिया गया। फादर खुद को माफ भी नहीं कर पा रहे थे, उन्हें इस केस को और संजीदगी से न लेने का गम था। बस दूर से रोज सिस्टर पुष्पा की कब्र कुछ देर रुक कर निहारा करते तब उनका दिन शुरू होता। धीरे-धीरे लोग सिस्टर पुष्पा के अद्भुत कामों, उनके योगदान को भूल गए और उनके रूप और उसके पीछे की कहानी को जानने में ज्यादा रुचि दिखाने लगे। आखिर संसार किसी को कहाँ इतना महत्व देता है?

फादर विमल काम खत्म होने के बाद अक्सर कोहिमा के धुँधले पहाड़ों की तरफ अपना स्कूटर लेकर निकल जाया करते। आते और आते ही निढाल पड़ जाते लेकिन कुछ दिनों से काफी खुश दिखते। लगता किसी से बातें करते हैं, उसकी बातों का उत्तर देते हैं और मुस्कुराते भी हैं। अक्सर दिलासा से शब्दों में 'मी मांछा' कहते सुना जा सकता था जिसका अर्थ है 'आई मिस यू' . . .

सुना सिस्टर पुष्पा के कमरों की दीवारें भी 'मी मांछा' से अटी पड़ीं थीं . . .

इन्दिरा नगर,
लखनऊ- (उ.प्र.)
मो.- 7860290146

मोहभंग

- प्रेम प्रकाश व्यास



जन्म - 1955।

रचनाएँ - दो पुस्तकें प्रकाशित, पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

हाँ! लिफाफे पर पता तो, अमरीकी दूतावास का ही था, उन्होंने फिर से, पाने वाले का पता ठीक से पढ़ा। प्रो. वैकुंठ दत्त ग्रोवर', 367 हरिओमनगर, हाँ ठीक से ही लिखा हुआ था, दरवाजा बंद कर भीतर आते-आते, उनकी नजर सामने की दीवार पर लगी शैलजा की मुस्कुराती तस्वीर पर टिकी, जिस पर कभी न सूखने वाली माला पड़ी थी।

'कितना चाव था न, तुमको जाने का छोड़ गई अकेला मुझे, लो अब मुझे अकेले ही जाना पड़ रहा है। देखो' कहते हुए अंदर जाकर अलमारी में ठीक से लिफाफे को रखने लगे। वैसे देखा जाए तो, वैकुंठ बाबू को खास चाव कभी रहा भी नहीं, उनकी अपनी दुनिया थी, जिसमें वे आत्म संतुष्ट थे, उनकी पुस्तकें, समाचार पत्र, कॉलेज में पढ़ाना। बस इतना ही, सफर पर जाने के नाम पर घबराहट होती थी। उन्हें घूमना बिल्कुल भी नहीं भाता था, पूरी जिंदगी शैलजा की भी यही शिकायत रही।

वे शैलजा के भाईयों का यूरोप भ्रमण, उनकी बहिनों की चार धाम यात्रा और सहेलियों की गोवा ट्रिप को बार-बार सुनते पर इस बार? इस बार-बात अलग थी। बात यह थी कि बेटा कई सालों से आने की जिद कर रहा था। इस बार तो उसने हठ ही पकड़ ली तो, वैकुंठ बाबू भी तैयार हो ही गए। वैकुंठ बाबू ने घड़ी देखी और बेटे को फोन लगाया, वहाँ अभी सुबह होने को होगी, और बेटा ऑफिस जाने की तैयारी कर रहा होगा। फोन जल्दी लग भी गया और बेटे ने बात की।

'वाह पापा यह बहुत ही अच्छा हुआ, अब टिकट की तैयारी कर लो आप, इस बार आना ही है।' उनकी छोटी-सी हाँ के साथ ही उसने हिदायतों का अम्बार लगा दिया, अकेले और वह भी विदेश यात्रा का पहला मौका था, सो ध्यान से सुनते रहे, और दिमाग में नोट भी करते रहे।

वैसे तो पिछले पाँच साल से अकेले ही रह रहे थे, वैकुंठबाबू, हाँ बीच-बीच में बेटा आता रहता था, सप्ताह-दस दिन के लिए, और बहू भी बस, दिख भर जाती थी, क्योंकि उसे भी पीहर जाना होता था। वे अकेले रहने के आदी थे। कॉलेज शिक्षा में बरसों नौकरी कर, रिटायरमेंट तक, ये घर ही बन पाया था उनसे, पर बेटे को पढ़ाने और विदेश भेजने में कोई कोर-कसर रखी नहीं। अब भी एक निजी कॉलेज में प्रिंसीपल बने हैं तो सिर्फऔर सिर्फ इतिहास पढ़ाने की ललक पूरी करने। शैलजा तो शुरू से ही बीमार रहती थी, पर बिजली विभाग में खुद्दार, ईमानदार और कड़क एकाउन्टेंट थी, वह भी। तभी तो वैकुंठबाबू अपनी तीन बहनों की शादी कर पाए, बेटे की महँगी पढ़ाई और यह एक मकान। पर रिटायरमेंट के चौथे ही महीने, सुबह-सुबह तुलसी के पौधे को पानी देते-देते हाथ से लोटा झन्न से गिरा, और शैलजा भी। अखबार

हाथ से रख कर, क्या हुआ? कहते हुए वैकुंठ बाबू आए तो देखा, शैलजा चित् पड़ी हुई है, और लोटा लुढ़कता हुआ कहीं दूर।

हतप्रभ से वैकुंठ बाबू ने एम्बुलैंस बुलाई, अस्पताल ले गए। डॉक्टरों ने जाँचा परखा और सट् से कह दिया, 'सर! सिरीयस पैरेलेटिक अटैक है।' वे बुत से खड़े रहे, समझ ही नहीं पाए, क्या कहा जाए, क्या किया जाये। चार दिन तक तो शैलजा लाश की तरह ही पड़ी रही बैड पर, जाने कितने इन्जेक्शन, कितनी ही ड्रिप, कितने टेस्ट और भी जाने क्या क्या। वैकुंठ बाबू को कुछ भी याद नहीं, दरअसल अब वे, वह सब याद करना ही नहीं चाहते।

पाँचवें दिन अचानक शैलजा की आँखें मिचमिचाकर खुलीं, शरीर में हरकत-सी हुई, होंठ कुछ फड़फड़ाए, मानो कुछ कहना चाहती हो। फिर वही निष्प्राण देह, सिर्फ साँसों का स्पंदन बताता था, अभी भी प्राण उस देह में थे। उन्होंने भी एक सप्ताह बाद ही फोन किया था बेटे को, यही सोचकर कि इतनी दूर बैठा, क्या कर पाए? सिवाय चिंता के। बेटा खबर सुनते ही बड़ा नाराज हुआ, पर उन्होंने समझाया भी, इतनी दूर थे तुम, और फिर आ भी जाते तो क्या करते? जो कुछ करना था वह तो डॉक्टरों ने ही करना था। मना ही कर दिया था उन्होंने, आने के लिए, यह आश्वासन दे कर कि रोजाना फोन पर, शैलजा का हाल बता देंगे वे। अस्पताल के वे बीस दिन भी तो याद नहीं रखना चाहते वैकुंठ बाबू। अब, बस इतना भर ही याद है कि इक्कीसवें दिन डॉक्टर ने ही उसे घर ले जाने को कह दिया था, तब आया था बेटा, तीन दिन के लिए, जिसमें से दो दिन तो मिलने-जुलने में ही बिता दिए उसने, पर यह सब भी उनको याद नहीं, कि यकायक एक दिन शैलजा का शरीर निस्पंद हो गया और। . . . छोड़िए भी वे यह भी याद नहीं करते कि शैलजा अब नहीं है।

वैकुंठ बाबू का घर काफी बड़ा था, पर घर में किरायेदार उन्होंने शुरू से ही नहीं रखा। शैलजा को ही पसंद नहीं था-घर के बरामदे में, छत पर अजनबी लोगों के सूखते कपड़े, बच्चों की आवाजें, उनकी रसोई से आती, चाही-अनचाही महक, शिकायतें, बिजली जाने और पानी न आने की। घर शुरू से ही तीन प्राणियों के लिए था। वे, शैलजा और सत्या, उनका परम भक्त नौकर। शैलजा के जाने के बाद, अकेले वे और उनका हनुमान, सत्या।

घर पर शाम को कुछ मित्र, या यों कहें सेवानिवृत लोगों का नियमित जमावड़ा रहता। वे घंटे दो घंटे कुछ बातें कर दिल बहला लेते थे। जब उन्हें पता चला कि वे बेटे के पास अमरीका घूमने जा रहे हैं, तो खूब हलचल-सी रही उस शाम, कईयों ने चुटकी ली 'अब तो तू वापस आने से रहा, जो भी गया वो आया नहीं आज तक।'

चाय पीते-पीते वे बोले, 'अरे नहीं यार, बस तीन महीने का वीजा है, बेटा कह रहा था आपका मन लगेगा तो परमानेंट वीजा भी मिल सकता है, पर अभी कुछ भी तय नहीं।'

'मन तो लगेगा ही वैकुंठ बाबू, बेटा, बहू, पोतियाँ हैं वहाँ। यहाँ तो अकेले हो आप। अब वापिस नहीं आने के।' उस शाम ठहाकों के बीच वे बस झेंपी मुस्कान से उत्तर देते रहे, कहीं किसी कोने में थोड़ा महत्त्वपूर्ण हो जाने की खुशी उनकी आँखों में झलक रही थी।

वैसे देखा जाए तो वैकुंठबाबू के ज्यादा सम्बंधी, इस शहर में थे भी नहीं, क्योंकि वे अपने पिता की अकेली संतान थे। शैलजा के सारे भाई विदेश जा चुके थे, और उसकी दो बहिनें भी दूसरे शहर में ब्याही थीं, सिर्फ बहू के पीहर वाले थे, पर वे भी अपने हाल में ही मस्त रहने वाले। शुरू से ही वे अकेले रहने, अकेले शामें बिताने, अपने दु:खों को अकेले उठाने के लिए अभ्यस्त से थे। अपनी बात कहने के लिए कोई दूसरा भी होना चाहिए, जैसी आवश्यकता

जीवन में रखी ही नहीं। लिहाजा खुद वैकुंठ बाबू ने ही जाने की तैयारी की, बीच-बीच में बेटे से पूछ लेते थे। सत्या, ने ही दौड़-दौड़ कर सारी तैयारी की। बहू का भाई जरूर एक दिन आया था एक बड़ा सा पार्सल लेकर, जो संभवतया वह सामान था जो बहू ने मँगवाया था। वैसे भी बड़े-बड़े सूटकेसों में बेटे-बहू का ही सारा सामान भरा था, खुद का तो बेहद मामूली सा सामान एक ही बैग में था। बहू ने तो कभी फोन नहीं किया, बेटा ही सामान के बारे में बताता जाता था और उसके मिलने की जगह भी। लाख की चूड़ियाँ, मोठड़ा की चुन्नियाँ, आरीतारी की कुर्ती और न जाने क्या- क्या! वैकुंठ बाबू ने अपने पूरे जीवन में जितना इस शहर की सँकरी गलियों का बाजार, और दुकानें नहीं देखी थीं, वो ऑटो में ठुसे लोग, स्कूटर के हॉर्न, लोडिंग टैक्सियों में भरा सामान, पैदल चलते लोग, उतनी इन दस दिनों में देख लीं। साथ सत्या था, जो दुकानें ढूँढ़ता रहा और बड़े बड़े साड़ियों के डिब्बे, लिफाफे और लेकर चलता रहा वरना वे तो कभी न कर पाते, शायद जाना ही कैंसिल कर देते। आखिरी दिन तक सामान की लिस्टें मिलान करते रहे वे।

उनके शहर से राजधानी का सफर भी प्लेन से ही था, आखिर घर की चाबियाँ सत्या को सौंप कर, दो बड़े सूटकेस और एक हैण्डबैग के साथ, वैकुंठ बाबू एयरपोर्ट निकल पड़े। फ्लाइट भी कुछ इस तरह से ली थी कि कुछ घंटे वहीं एयरपोर्ट पर रुक कर अगली फ्लाइट, अमरीका की ले लें।

अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर अपने भारी भरकम सूटकेस और हैण्डबैग के साथ घूम-घूम कर अकेले ही सारी औपचारिकता, पूरी करते समय, वे अचानक आई इस स्फूर्ति पर आश्चर्यचकित भी थे। नए स्पोर्ट्स शू, जीन्स और लाल टी-शर्ट पहने, वैकुंठ बाबू अपने आपको कुछ ज्यादा ही युवा अनुभव करने लगे थे। उन्हें आश्चर्य भी हो रहा था कि, वे पहले बेटे की बात मान कर जल्दी क्यों नहीं चले गए। दरअसल बेटे-बहू से अधिक उन्हें अपनी पोतियों से मिलने की प्रबल उत्कंठा थी। अनन्या और श्रद्धा। अनन्या तो जन्मी भी वहीं थी, हाँ इसके साथ एक नए देश, परिवेश व उसकी समृद्धि देखने की ललक भी थी, जो कई वर्षों से उनके मन में छुपी थी। यों भी अमरीका का इतिहास वर्षों तक पढ़ाया था उन्होंने।

राजधानी से लॉस एंजिल्स तक की बारह-तेरह घण्टे की उड़ान में, वैकुंठ बाबू सोए, नहीं। प्लेन की मद्धिम सी रोशनी, और आराम देह कुर्सी पर, लगभग पसरे से, लगातार उनकी कल्पनाओं की उड़ान चलती रही। वहाँ पहुँचते ही वे, पोतियों की पढ़ाई का जिम्मा सँभालेंगे, थोड़ा बहुत भारतीय संस्कृति का परिचय भी करवाएँगे, खुद भी तो वे भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध प्रोफेसर रहे हैं। खूब किताबें पढ़ कर सुनाएँगे, किताबें पढ़ने के फायदे बताएँगे, कविता, कहानी और . . . जाने क्या क्या सोचे चले जा रहे थे वे। जगहें भी देखनी हैं उनको घूम कर, एक लम्बी सूची भी मन हीं मन बना ली थी वैकुंठ बाबू ने।

विश्वविद्यालय. . .! हाँ, स्टैनफार्ड भी तो देखना है उन्हें। अरे समन्दर भी . . .! समदंर भी कहाँ देखा था वैकुंठ बाबू ने। पूरी जिंदगी कॉलेज में पढ़ाते-पढ़ाते, कब समंदर देख पाते। जिम्मेदारियों का समंदर देखते-देखते ही जीवन बीत गया। कल्पना और योजनाओं में कब सफर बीता, उन्हें नहीं पता। एयर होस्टेस की उद्घोषणा से ही जान पाए वे कि उनके सपनों का अमेरिका आ गया है। एयरपोर्ट पर थके, नींद से बोझिल आँखें लिये, किन्तु उत्साह और उमंग को छुपाते हुए वैकुंठ बाबू, चैकिंग की ऊबाऊ, और इमिग्रेशन की पुलिसिया पूछताछ की लम्बी प्रक्रिया से कब गुजरे, याद नहीं। जब वे लांज में आए, तो दूर अर्द्धचंद्राकार रेलिंग पर लोग हाथों में तख्तियाँ

लिए, इन्तजार करते दिख रहे थे। बेटे ने भी बताया था उनको, वे लेने आएँगे और तख्ती से ही पहचानना होगा। काफी देर ट्रॉली पर सामान रखे वे अपने नाम की तख्ती ढूँढ़ते रहे। फुटबाल के मैदान सा जगर-मगर करता हॉल पूरा पार कर, अंतिम छोर पर पहुँचते-पहुँचते आखिर थकान ने उन्हें घेर ही लिया, कि अचानक वीरेन की आवाज से उनमें ऊर्जा का संचार हुआ। हाँ वीरेन ही था, उसी की तख्ती थी-'डॉ. वैकुंठ दत्त' आँखें डबडबा आईं, उनकी, पास आते ही बेटे को बाहों में भर लिया उन्होंने। ट्रॉली बेटे ने ले ली। बाहर आते ही अनगिनत गाड़ियों की कतार पार कर, आखिर एक खूब लम्बी गाड़ी में सामान लादते समय वे गर्व से फूले नहीं समा रहे थे। गाड़ी में बैठकर एयरपोर्ट से बाहर आते ही, सपाट चौड़ी, चमकती सड़क पर गाड़ी मानो मछली की तरह तेज रफतार से फिसलने लगी। बेटा चुपचाप गाड़ी चलाता रहा। उन्होंने ही बातचीत शुरू की।

'बहू ठीक है न बेटे?'

'हाँ पापा दरअसल उसके ऑफिस की आज पार्टी है। आपको पता है, यहाँ लोग सारे काम वीक-एंड पर ही रखते हैं। चाहे बर्थ-डे हो, मैरिज एनिवर्सरी हो, यहाँ तक कि शोकसभा भी।'

'अनन्या और श्रद्धा कैसी हैं? मेरी नन्हीं परियाँ' उनकी आल्हाद से भरी आवाज, तरल हो आई थी।

'वो दोनों भी स्कूल टूर पर गई हैं, पापा, एक सप्ताह के लिए। उन्हें आज सुबह ही रवाना किया है, शनिवार तक लौटेंगी वे।'

वैकुंठ बाबू को यहाँ के जीवन की हकीकत से परिचय होने लगा था। सिर्फ 'ओह . . . अच्छा, अच्छा ठीक है घूम आएँगी दोनों।' कह कर चुप हो गए वे। सोचा, सभी की व्यस्तताएँ तो रहेंगी ही, मेरे आने से इनका दैनिक जीवन थोड़े ही बदलेगा। और मैं तो घूमने आया हूँ। अपने मन को इतना जल्दी समझाना पड़ेगा, यह सोचा न था उन्होंने। वे गाड़ी के शीशे से दिखाई देते अनजाने परिवेश को ही देखने लगे। किसी खिलौना संग्रहालय में बने बिल्कुल एक जैसे मकानों की कतारें आने लगीं। गाड़ी कब धीरे हुई और कब बाएँ-दाएँ घूमती एक मकान के बाहर रुकी पता भी न चला वैकुंठ बाबू को।'

'लो पापा यह आ गया अपना घर।' वे गाड़ी से उतरे, दूर-दूर बसे मकान, निरभ्र, नीला आकाश, भरपूर हरियाली, एकदम साफ सफ्फाक, चौड़ी सड़कें न कोई शोरगुल, न आवाजें। बस एक दो कारें,धीरे से पास से गुजर जाती थीं। वे पुनः उत्साह व उमंग से भर उठे। नेम प्लेट पर दृष्टि पढ़ते ही, तनिक मुस्कुरा उठे वे।

'ई. वीरेन्द्र दत्त ग्रोवर'

लगभग चौबीस-पच्चीस घंटे की थकान के बावजूद, वहीं खड़े-खड़े, खूब तेज साँस खींचकर, फेफड़ों में भरने लगे, वहाँ की ताजी हवा, वहाँ की खुशबू, वहाँ का दृश्य। वाकई वैकुंठ बाबू एक बारगी फिर उल्लास की नदी में बहने लगे। बाप-बेटे दोनों ने ही सूटकेसों को भीतर लिया। अच्छा खासा बड़ा मकान था। बड़ी-सी लॉबी में सारे कमरों के दरवाजे खुलते थे, सामने खुली सी रसोई, ऊपर जाने को सीढ़ियाँ। जब बेटा, उनका कैरी बैग लेकर ऊपर जाने लगा, तब उन्हें पता लगा कि उन्हें ऊपर वाले कमरे में रुकना है। कमरा पसंद आ गया, वैकुंठ बाबू को क्योंकि बड़ी-सी खिड़की से दूर-दूर तक हरियाली दिख रही थी। बिस्तर के पास ही टेबल-कुर्सी, साथ ही जुड़ा बाथरूम, अलमारी भी।

'पापा आप नहा धो लीजिए, थके भी होंगे। मैं नीचे नाश्ता लगाता हूँ तब तक . . .' बेटे ने कहा।

'नहीं, नहीं थका, तेरा घर देख कर

थकान तो कब की उतर गयी बेटा।' मुस्कुराते हुए वे बोले और नहाने चले गए। नहा कर वे नीचे उतर कर आए तब लॉबी की निस्तब्धता उन्हें भली लगी। नाश्ता टेबल पर था पराठे, दलिया, मक्खन और प्लेट में रखी कॉफी! वे चुपचाप नाश्ता करने लगे! बेटा फोन पर लगा हुआ था। कॉफी पीते-पीते उन्होंने पूछा-

'तूने छुट्टी ली क्या, वीरेन?'

'नहीं पापा, छुट्टी कहाँ मिलती है यहाँ, आज बदले में नाइट शिफ्ट है मेरी, आजकल क्लोजिंग है तो वीकेण्ड भी छुट्टी नहीं है।' कहकर, वह भी पास बैठ गया। नाश्ता करके वे अपने कमरे में आ गए। बेटे ने लाख सोने के लिए कहा, पर वे न माने, बस वीरेन से बातें करने लगे। दोपहर से शाम होने लगी। इसी बीच बहू ने वीरेन को फोन पर बताया वह आ चुकी है। वीरेन चाय लेने नीचे गया, तो वैकुंठ बाबू खिड़की के पास खड़े होकर ताम्बई रंग के आसमान और ढेर-सी छितरी हरियाली को आँखों से पीने लगे।

वैकुंठ बाबू का प्रारंभिक विचार कम से कम दो महिने तक रुकने का था। पर. . .? पता नहीं क्यों? आने के कुछ घण्टों के भीतर ही, उनके भीतर कुछ-कुछ होने लगा, मानो कुछ दरक सा गया, काँच की तरह गिरा, और टूटने जैसी आवाज आई। पिछले पंद्रह दिन से जो उत्साह ऊँचे आसमान में पतंग सा पेंग मार रहा था, मानो हवा निकलते, विशाल गुब्बारे सा, नीचे आने लगा था। धीरे धीरे नीचे उतरता, वह जमीन पर आकर मानो लुढ़क ही गया। और उसकी बची खुची हवा भी निकलने लगी थी।

आज पहली बार, वैकुंठ बाबू को लगा कि उन्होंने आकर ठीक नहीं किया। पूरा सप्ताह कब निकला, पता भी न चला, एक दम मशीनी जीवन। वीरेन उठ कर तैयार हो, ऑफिस जाने लगता, वे भी साथ-साथ नाश्ता कर लेते। फिर घर में नि:शब्द शांति छा जाती। बहू अपने ऑफिस चली जाती और वे, या तो ऊपर कमरे में चले जाते या, यों ही बाहर जाकर लम्बी सैर कर आते। पास के पार्क, छोटे से स्टोर, पेट्रोल पम्प सारे ही तो देख लिए उन्होंने। दोपहर को बहू आकर खाना मेज पर रख कर फोन करती, जब वे नीचे आते तो टेबल पर खाना रखा होता। रात को वीरेन के आने तक, इसी तरह अकेले खाकर वे कमरे में आ जाते। वीरेन कुछ किताबें लाया था, उन्हें पढ़ते। शनिवार शाम बहू ही दोनों पोतियों को लेकर आई थी। तब वे टेबिल पर रखी चाय पी रहे थे। उनको देख, दोनों ही थोड़ा चकित हुईं, बहू के बताने पर, हाय ग्रैण्डपा' कहा और कमरों में घुस गईं। बस इतना ही वार्तालाप हुआ। इसे भी उन्होंने यहाँ के कल्चर के रूप में स्वीकार लिया। वे सैर को निकल गए।

अगला सप्ताह भी कोई ज्यादा अलग नहीं था। बस सुबह उन्हें आवाजें सुनाई देतीं तब दोनों पोतियाँ स्कूल चली जातीं। वे कब आतीं, कब क्या खातीं, उन्हें मालूम नहीं। वीरेन भी एक-दो बार जल्दी आया तो बस कुछ बातचीत कर पाए। कई बार उन्हें लगता, वे किसी निकट सम्बधी के घर आए हैं, या किसी परिचित के यहाँ ठहरे हुए हैं। वे सैर को जाते जरूर थे, अखबार पढ़ते जरूर थे, कमरे में लगा टी वी भी देखते, पर धीरे-धीरे अनजाने, अनछुए रास्ते से एक अजीब सी उदासी उनके भीतर उतरने लगी। पहले तो हल्की-हल्की सी, फिर धीरे-धीरे धुन्ध सी जमने लगी, और अब तो उनके भीतर घने कोहरे जैसी हो गई थी। जिन-जिन कामों की फेहरिश्त मन में उन्होंने बनाई थी, वह न जाने कब गायब हो गई, एक अजीब सा अपराध बोध उनमें भर गया।

अचानक शुक्रवार को नाश्ते के समय वीरेन ने कहा पापा, 'हम सोचते हैं, कल हम समुद्र किनारे घूमने चलते हैं, रात रुककर सण्डे को शाम तक लौट आएँगे।' वे खुश हुए हाँ,

'अच्छा है सबकी आउटिंग हो जाएगी।'

'हाँ पापा रात को आकर पूरी प्लैनिंग करते हैं'। अपनी कॉफी जल्दी से पीकर बेटा उठ गया। वे भीतर ही भीतर बहुत खुश हुए। समुद्र तट पर जाने की बहुत इच्छा थी उनकी। दिन भर उनका मन उल्लास से भरा रहा, किसी बच्चे की तरह जिसे मन माँगी मुराद मिलने वाली हो। वीरेन रात को देर से आया था। सुबह चाय पर भी उसने कोई चर्चा नहीं की। शायद ऑफिस का कोई काम निकल आया हो, तो जाना कैंसिल हो गया होगा। उन्होंने अपना नियमित कार्यक्रम, नाश्ता, दोपहर का खाना, शाम का घूमना वैसे ही किया, जैसे रोजाना करते थे।

रात को वीरेन उनके कमरे में आया, वे कोई किताब पढ़ रहे थे। वह पास वाली कुर्सी पर बैठ गया।

'दरअसल पापा कल सुबह हम सब समुद्रतट पर घूमने जा रहे हैं। पहले आपको साथ ले जाने का सोचा था, पर एक तो लम्बी ड्राईविंग है, फिर सारे के सारे कपल्स और बच्चे हैं आपको कम्पनी देने वाला कोई है नहीं। आप बेकार बोर होंगे वहाँ।'

'हाँ पापा रात को आकर पूरी प्लैनिंग करते हैं'। अपनी कॉफी जल्दी से पीकर बेटा उठ गया। वे भीतर ही भीतर बहुत खुश हुए। समुद्र तट पर जाने की बहुत इच्छा थी उनकी। दिन भर उनका मन उल्लास से भरा रहा, किसी बच्चे की तरह जिसे मन माँगी मुराद मिलने वाली हो। वीरेन रात को देर से आया था। सुबह चाय पर भी उसने कोई चर्चा नहीं की। शायद ऑफिस का कोई काम निकल आया हो, तो जाना कैंसिल हो गया होगा। उन्होंने अपना नियमित कार्यक्रम, नाश्ता, दोपहर का खाना, शाम का घूमना वैसे ही किया, जैसे रोजाना करते थे।

रात को वीरेन उनके कमरे में आया, वे कोई किताब पढ़ रहे थे। वह पास वाली कुर्सी पर बैठ गया।

'दरअसल पापा कल सुबह हम सब समुद्रतट पर घूमने जा रहे हैं। पहले आपको साथ ले जाने का सोचा था, पर एक तो लम्बी ड्राईविंग है, फिर सारे के सारे कपल्स और बच्चे हैं आपको कम्पनी देने वाला कोई है नहीं। आप बेकार बोर होंगे वहाँ।'...

वे हतप्रभ से बेटे का चेहरा देखने लगे। लेकिन उसी क्षण मुस्कुरा दिए वे-

'कोई बात नहीं बेटा, तुम लोग जाओ, एंजॉय करो।'

'आपका नाश्ता, खाना बनाकर फ्रिज में रख देंगे, आप माइक्रोवेव में गर्म करके खा लेना।'

'ठीक है, ठीक है बेटा, तुम चिंता मत करना।'

'अब पापा, आप सो जाइए, रात हो गई।' कह कर उठ गया था बेटा।

उसके जाने के बाद वे उठकर खिड़की के पास खड़े हो गए, रात में दूर चमकती गाड़ियों की रोशनियों और अँधेरे में खड़े-बड़े-बड़े पेड़ों को देखते रहे।

सुबह बेटा आया था कमरे में कहने-'हम जा रहे हैं पापा, आप अंदर से लॉक कर लीजिए।'

वे धीरे-धीरे उसके पीछे उतरे, थके-थके से। उनकी कार के जाने के बाद अंदर आकर दरवाजा लॉक किया, और फिर सीढ़ियाँ चढ़ कर कमरे में आकर बिस्तर पर लेट गए। उस पूरे दिन को भी याद नहीं करना चाहते वैकुंठ दत्त। ऐसा दिन शायद जीवन में

कभी नहीं आया। देर रात कार के हॉर्न की आवाज पर वे नीचे उतरे, दरवाजा खोला तो वीरेन ही था आगे-आगे हाथ में थैले पकड़े।

'हैलो पापा, कैसा दिन रहा?'

'अच्छा रहा, तुमने खूब एंजॉय किया ना।'

'हाँ, पापा बहुत ही, खास कर बच्चों ने' और थैले टेबिल पर रखे। वे सीढ़िया चढ़ने लगे। अचानक वीरेन ने फ्रिज खोलकर देखा- 'ये क्या पापा, आपने न तो नाश्ता किया, न खाना खाया।'

आधी सीढ़ियों से वे बोले-'मैं तुझे कहना भूल गया था बेटा, आज तेरी माँ की पुण्य तिथी थी' और अपने कमरे में आ गए वे। रात को देर तक अब वे सोते नहीं थे, कुछ न कुछ पढ़ते रहते। उस दिन, देर रात, अचानक वैकुंठ बाबू ने पाया कि पीने के पानी की बोतल खाली है। घर में कोई पानी पीता भी नहीं था, सिर्फ उनके आने पर कुछ बोतलें लाकर डाइनिंग टेबल पर रखी हुई थीं। रात के शायद बारह बजने को थे। वे सीढ़ियाँ उतर कर नीचे गए, डायनिंग टेबल पर रखी बोतल उठा कर, वापिस मुड़े ही थे। पहला पाँव सीढ़ी पर रखा ही था कि, बहू की आवाज सुनाई दी।

'तुम्हारे पापा की क्या प्लानिंग है, कब तक रुकेंगे अभी?'

'प्लैनिंग! कैसी प्लैनिंग अभी तो आए हैं, यार!' बेटे की आवाज सुनाई दी उन्हें।

'अभी? हद हो गई, पूरे पंद्रह दिन तो हो गए उनको आए। आजकल, तुमको कुछ याद भी नहीं रहता क्या?'

वैकुंठ बाबू के पाँवों में मानो किसी ने बड़े-बड़े वजनी पत्थर बाँध दिए हों। एक हाथ से रेलिंग थामे खड़े हो गए। ऐसी बातचीत के आदी नहीं थे वे। जल्दी में सीढ़ियाँ चढ़ कर कमरे में जाना चाह रहे थे वे, ताकि बेटा-बहू में से कोई बाहर आकर उनको बातें सुनता देख न ले, पर पाँव थे, कि उठने का नाम नहीं ले रहे थे। वातानुकूलित हॉल की ठंडक के बावजूद पसीना उनकी कनपटियों से टपक रहा था। और उसकी भाप ने चश्मे के भीतर घुस कर, लगभग धुँधला दिया था।

वैकुंठ बाबू ने पूरी ताकत से पाँव उठाए, और एक सीढ़ी चढ़े।

'सोचो डियर, वहाँ पापा कितने अकेले रहते हैं। यहाँ कुछ दिन सबके साथ . . .।

'तो क्या हुआ, सारे ही बूढ़े लोग अकेले ही रहते हैं। हर कोई तो नहीं आ जाता, यूँ मुँह उठाए, बच्चों की प्राइवेसी डिस्टर्ब करने। सप्ताह भर तो हरेक को सह लो, पर यह क्या इस तरह जम कर . . .'

'सुनो, वह पापा हैं, हर कोई नहीं। वे तो जब चाहे आ सकते हैं न, यह घर है उनका। मैं तो सोच रहा हूँ पापा को पूछ कर ग्रीन कार्ड के लिए एप्लाय कर दूँ। . . .

वे कुछ भी नहीं सुनना चाहते थे। एक-एक कर सीढ़ियाँ चढ़ते, वे हाँफने लगे थे, और पसीने से तरबतर। बस एक सीढ़ी ही बची थी, आखिरी सीढ़ी!

'तो सुन लो! उनके लिए अलग फ्लेट भी ले लेना, और जब मन आए मिलने चले जाना। पता है अनन्या और श्रद्धा कितनी बार पूछ चुकी हैं, ग्रेंड-पा वापिस कब जा रहे हैं इंडिया।'

बहू कमरे से निकली, धड़ाम से दरवाजा बंद कर स्टडी रूम में बत्ती जला कर बैठ गई। आज वे पहली बार, थर-थर काँप रहे थे। ऐसा तो जीवन में कभी नहीं हुआ, कभी नहीं। कमरे में घुस कर, उन्होंने दरवाजा बंद किया धीरे से और बिस्तर पर बैठकर आधी से ज्यादा बोतल पानी पी गए। खिड़की के पास खड़े वे, शीशे के पार चाँदनी रात में नहाए ऊँचे-ऊँचे पेड़ों, दूर सड़क पर कारों की रोशनियाँ देर तक देखते रहे। अचानक उनके भीतर बहुत कुछ भरभराकर

गिर पड़ा। पुराने जर्जर मकान सा, धूल गुबार उड़ाता, सीलन की गंध और पुरानी आवाजों को दबाता। पता नहीं क्यों, अपने सम्पूर्ण जीवन पर आज उन्हें तरस आने लगा। अगले पूरे दिन वे भीतर, गहरे उदास, किंतु ऊपर से शांत दिखने का अभिनय करते रहे। रात को वीरेन कुछ जल्दी ही आ गया और उनके कमरे में ही बैठ गया। और वे बोल ही पड़े।

'वीरेन! अब वापिस जाने का बहुत मन है।'

उनका बेटा चौंक गया। 'इतनी जल्दी पापा?' अभी तो कुछ ही दिन हुए, आप को आए हुए? उन्हें बेटे की आवाज में थोड़ी कँपकँपाहट और खोखलापन महसूस हो रहा था। बात को सँवारने के लिए वे बोले-'नहीं बेटे! बस इतनी सी इच्छा थी, तुम्हें, बहू और बच्चों को देख लूँ, तुम्हारा घर, और तुम खुश हो। बस यही तो देखना था। और तुम जानते हो घूमना-फिरना वैसे भी मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'कुछ दिन और रुकते पापा।' बेटे ने एक बार कह भर दिया, जो ऐसे मौकों पर जरूरी भी होता है।

'नहीं बेटे, बस अब चलूँगा' उन्होंने मुँह दूसरी तरफ कर लिया था, पता नहीं आँख ही न भर आए कहीं, ऐसा सोचकर। थोड़ी देर तक मानो समय घनीभूत हो गया, एक नि:शब्दता, जिसमें धड़कन तक अनुभव कर रहे थे वे। बेटा थोड़ी देर बाद उठा, वे भी उठे और उसके कंधों पर हाथ रख कर बोले-'बहुत ही अच्छा लगा वीरेन, इतने दिन साथ रह कर। अब तो जब भी मन होगा, आ जाऊँगा' और एक सौ फीसदी झूठी मुस्कान चेहरे पर ले आए, वैकुंठ बाबू। बेटा चुपचाप नीचे चला गया। आज खिड़की में कुछ भी देखने का मन नहीं था उनका।

अगले दो दिन के भीतर ही, कब और कैसे टिकट का इन्तजाम हुआ, उन्हें पता भी न चला। यह भी पता नहीं चला कि एक बड़ी एटैची कौन लाया, जिसमें आधा सामान तो बहू के पीहर वालों का था, वैकुंठ बाबू के लिए कुछ कपड़े-कुछ लोगों को देकर विदेश यात्रा प्रमाणित कराने जैसी चीजें भी कौन लाया, पता नहीं, इतनी जल्दी सब कैसे हुआ। बस वैकुंठबाबू को तो रात में पता चला कि कल उनको जाना है, भीतर ही भीतर प्रसन्न ही हुए वे। फिर तो कब सामान गाड़ी में रखा गया, कब एयरपोर्ट पहुँचे और अंदर जाते समय बेटे को कुछ कहा भी या नहीं, कुछ भी याद नहीं। उन्हें तो यह भी याद नहीं कि जब बहू ने भी आश्चर्यजनक रूप से उनके चरण छुए तो, उन्होंने क्या आशीर्वाद दिया? बस हाथ हिलाते-हिलाते वे इमिग्रेशन क्लियर कर मुड़ कर लॉबी में आ गए थे। सिर्फ इतना याद है कि वे कुर्सी पर वहीं बैठे रहे भाव शून्य, विचार शून्य और लगभग हतप्रभ। प्लेन के चलने के एनाउन्समेंट के साथ वे सीधे अपनी सीट तक भी किसी नशे की अवस्था में ही पहुँचे थे। अपनी सीट पर बैठ कर उन्होंने पास की खिड़की से बाहर झाँका। एयरपोर्ट पर दिवाली जैसी जगरमगर करती रोशनी को कुछ देर देख कर उन्होंने पर्दा लगा दिया। सीट पर सिर टिकाकर आँखें बंद कर लीं। वैकुंठबाबू को लगा अब वे बहुत खुश हैं, बहुत ही खुश।

श्री कैलाश कुंज,
17-ई-716, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड,
मो.- 869647

लघुकथा

प्रार्थना

- श्यामनारायण श्रीवास्तव



जन्म - 20 जुलाई 1959।
शिक्षा - एम.ए.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्मान - साहित्यिक सांस्कृतिक कला संगम अकादमी प्रतापगढ़ द्वारा सम्मानित।

बीच शहर में स्थापित एक विशाल मन्दिर का प्रांगण। जहाँ प्रतिदिन बहुत से भक्त आते हैं। प्रसाद चढ़ाते हैं। दान करते हैं और पुण्य कमाते हैं।

जिस प्रकार व्यापारी अपनी दुकान के लिए सर्वप्रथम स्थान का चयन करता है। ठीक उसी प्रकार एक भिखारी उस मंदिर के बाहर बैठने लगा। उसे दान में अच्छा पैसा भी मिलने लगा। और जब बाजार में एक दुकान चलने लगती है तो दूसरी भी खुल जाती है। इसी क्रम में तीसरी व चौथी आदि भी। अर्थात् वहाँ दूसरा भिखारी भी आ गया।

पहला भिखारी लँगड़ा था, दूसरा अंधा था।

अंधा क्या पाता है। इसे लँगड़ा साफ-साफ देखता और। उसे ईर्ष्या होती। लँगड़ा क्या पाता, उसे अंधा नहीं देख पाता। उसे संतोष है, जो मिल गया उस वह भगवान की कृपा समझता है।

एक दिन लँगड़ा बोला, 'ये अंधे कल से यहाँ मत आना, नहीं तो कुछ लोगों से कह के तुम्हारी टाँगे तुड़वा दूँगा।

'क्यों भाई, मुझसे क्या गलती हो गई?' अंधे ने विनम्रता से पूछा।

'इसलिए कि जब से तुम यहाँ आये हो, मेरा धंधा चौपट हो गया।'

'ये तो अपना-अपना भाग्य है।' अंधे ने कहा।

'लँगड़ा तुरंत बोला, कुछ नहीं तुम अंधे होने का लाभ उठा रहे हो। मैं तो कहता हूँ, भगवान मेरी तरह तुम्हें भी दोनों आँखें दे दें। तो देखूँ कैसे मुझसे अधिक कमाते हो?

अंधा अचानक चुप हो गया। उसे अंधकारमय जीवन में प्रकाश का एहसास हुआ। उसने मन ही मन ईश्वर से कहा, 'हे भगवान आप उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेते तो फिर मुझे भीख माँगने की आवश्यकता ही नहीं थी। तब तो मैं भाग्य से कर्म की ओर चला जाता।'

बी.एफ-1, जिन्दल स्टील,
एण्ड पावर लि.,
रायगढ़ -496001(छ.ग.)

सत्या शर्मा 'कीर्ति' की दो लघुकथाएँ



शिक्षा - एम. ए., एल.एल.बी.।

रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

प्रवासी

भैया जी दूर देश से आये हैं क्या?'

रिक्शा वाले ने प्रताप जी को रिक्शे पर बैठाते हुए पूछा।

'हाँ, भाई, लेकिन बचपन तो इन्हीं गलियों में गुजरा है।'

'अब तो वर्षों हो गए, कितना कुछ बदल गया है।' खेत-खलिहान को देखते हुये प्रताप ने कहा।

'कब, कहाँ रहते हैं साहब?'

'मैं एन आर आई हूँ।'

'मतलब?' चौंक गया रिक्शा वाला।

'मैं प्रवासी . . .'

वह भारतीय बोल भी नहीं पाए थे कि रिक्शा वाला ठठाकर हँस पड़ा।

'मैं तो सोच रहा था कि आप कोई बड़े आदमी हो। मैं भी कुछ दिन पहले दिल्ली से लौट कर आया हूँ, लोगों ने बताया मैं भी प्रवासी हूँ।

आप चिंता न करें सब ठीक हो जाएगा भैया।

लेकिन अपने ही देश में प्रवासी होने का दर्द रिक्शे वाले के चेहरे पर साफ दिख रहा था।

आभासी भय

सुबह-सुबह फेसबुक खोली ही थी कि- मित्र कवयित्रि अरुणा जी ने आत्महत्या कर ली।

दिल धक्क से रह गया।

तुरन्त अन्य मित्रों को मैसेज डाले ताकि कुछ जानकारी मिले, आखिर क्या हुआ था?

मासूम सी, प्यारी, अंतर्मुखी अरुणा जी की तस्वीर आँखों के सामने से हट ही नहीं रही थी। कभी मिली नहीं थी उनसे किन्तु हमारे विचार इतने मिलते थे कि आपस में अच्छी दोस्ती हो गयी थी इस आभासी माध्यम पर।

तभी मैसेंजर पर प्रिया का मैसेज दिखा- 'पुलिस को अरुणा का सुसाइड नोट मिला है।'

'क्या लिखा है?' मैं खुद को संयमित नहीं कर पा रही थी।

लिखा है- 'लॉकडाउन के बाद से फेसबुक पर दिन भर ऑनलाइन काव्य पाठ, गोष्ठियाँ, साहित्यिक चर्चा होती रहती है किन्तु इन तीन महीनों में किसी ने मुझे एकल प्रस्तुति के लिए नहीं कहा। जबकि सभी मेरी मित्र सूची में हैं।

दिन भर पेज और ग्रुप लाइक करने के मैसेज आते रहते हैं लेकिन मेरी कविताओं की कोई अहमियत लोगों में नहीं है। कई बार सोचा आगे बढ़ कर खुद ही कहूँ किन्तु आत्मसम्मान हमेशा आगे आता रहा।

धीरे-धीरे मुझमें हीन भावना भर गई, स्वयं की उपेक्षा मुझसे सही नहीं जा रही। क्या मेरा लिखा इतना निरर्थक है कि लोगों को मेरी याद ही नहीं रही मुझे खुद पर शर्म आने लगी है। मैं अपने फेसबुक मित्रों को अपना चेहरा दिखा नहीं पाऊँगी। इसलिए आत्महत्या कर रही हूँ।'

'क्या..?' मैं लगभग चीख पड़ी।

आज आभासी दुनिया के वास्तविक भय ने अरुणा जी जैसी संवेदनशील, उभरती हुई कवयित्रि को हम सबसे सदा के लिए छीन लिया था।

डी-2, सेकेंड फ्लोर, महाराणा अपार्टमेंट
पी. पी. कम्पाउंड, रांची-834001 (झारखण्ड)
मो. - 7717765690

कविता

- उमेश कुमार सिंह



म.प्र. साहित्य अकादमी के पूर्व निदेशक, चिंतक, विचारक एवं शिक्षा विद। निरन्तर लेखन में सक्रिय।

काली रात

काली रात
अदृश्य हाथों से
बुन रही है
मकड़ी-सा मृत्यु-
जाल।

बाराह-मुँह
श्वेत-श्याम-देशों से
लाया गया
पीड़ा-प्रवंचना -
पहाड़ का
आत्मघाती-सूत-
लाल।

शहादती-इबादत ने!
चोर मुद्रा में
धर्म-निरपेक्षता का
मुखौटा /बुर्का पहन
अस्थिर-अराजक -खंद में
देश को दिया डाल।

भूख-हड़ताल से
यमराज-भैंस की
विद्रूप दस्तकारी ने
अमावस की रात
अपने ही घर
बुन दिया ग्रहण जाल।

गहन-तमस-गुफाओं में
निर्द्वन्द्व-निर्भय-चेतना का
अरुण-शुभ्र-प्रकाश भर!
हो सके मुक्त विश्व
अज्ञात भय-विषाद से
ब्रह्मांड में जय नाद हो
हे भुवनेश्वर!
हे महाकाल!

घर के सामने

घर के सामने
रोज अपने दरवाजे से
बिखरे तिनके-तिनके को
बुहार कर
पड़ोस और अपने घर की
सीमा रेखा में
इकठ्ठा कर पड़ोसन
झाड़ू झेटक
कमर सीधी कर
एक जंग जीत लेती है।
कल सुबह फिर वही बुहारे
घास-फूस के तिनके
सिर उठा होंठ बंद कर
निमीलित पलकों के कोने से
उसके झाड़ू से अपनी पीठ
सहलाने का इंतजार करते हैं।
मैं सोचता हूँ
प्रभु! यह दो अबोध प्राणमयी
संज्ञाओं के बीच का खेल
तुम कब खत्म करोगे?
शायद नहीं भी करो!
आखिर तुम्हें जो दोनों के
अहंकारों को रोज ही तुष्ट करना है।
प्रतीक्षा है तुम्हारे बड़े सींक और
नोक वाले झाड़ू की
जब समष्टि में तुम एक साथ बुहार दोगे
नहीं होंगी घरों की सीमाएँ
और न ही अहंकारी सत्ताओं की
अनजानी अबोध हरकतें।
कहीं वही झाड़ू तो नहीं चल रहा है?

20-21, शुभालय विला,
बरखेड़ी पठानी, भोपाल-462043 (म.प्र.)
मो.-9425600181

खेत, बगीचा और मन

- मीना सिंह

मेरे पास गाँव जैसे
खेत नहीं
कांक्रीट के जंगलों में
बालकनी में-
गमलों का बगीचा है
जिनमें अलग-अलग मौसम में
फूलने वाले पौधे हैं
कुछ इंडोर हरे गाछ भी

फर्क कितना है
गाँव अब उजाड़ होने लगे हैं
पढ़-लिख कर खेत जोतना नहीं
चाहता कोई
फटी हुई घुटनों वाली जींस का जमाना है
खुश है उसी में नया समय
नया जमाना
छुट्टियों में कभी-कभी
पास के खेत से
जो ताजा भुट्टे खाने को मिलते थे,
आग में छोला हुआ हरा चना
चने की ताजी पत्तियों को
नमक लगाकर खाना,
ताजे मटर की घुघनी
सूखे महुआ के ठेकुए
स्वाद सब याद है
अब तक
पर परोसे में मिलता कुछ नहीं
घरों में लग गये हैं ताले
एक आध कोई / दीया बाती के
लिए रह गया है
बटाई के खेतों का हिसाब रखता है
शिवालय में/चढ़ाता है जल . . .
काली माई के चौरे के पास
पेड़ पर टँगे
घंट में/ सोई आत्माओं को
जल भी देता है

सर्दियों में खँखारता है बलगम
दवा लेने नहीं जाता
दवा ? गाँव के अस्पताल में
दवा है कहाँ ?

शहर की बाल्कनी से
बगीचे को
सींचता मन उतर कर
कभी डोलता है। बेचैन हो
पितामहों का गाँव देखने को
चाहता है
गमले में मौसम के पहले खिले
फूल लेकर
मन दौड़ता है-चल गाँव के
शिवालय का जीर्णोद्धार तो कर ले
वर्ना फर्क इतना ही है
कि गाँव के घर ताला जड़कर
कांक्रीट के जंगलों में
खो गये हैं
और हथेली के ताजा फूल
सोच में डूबे सूख गये हैं।

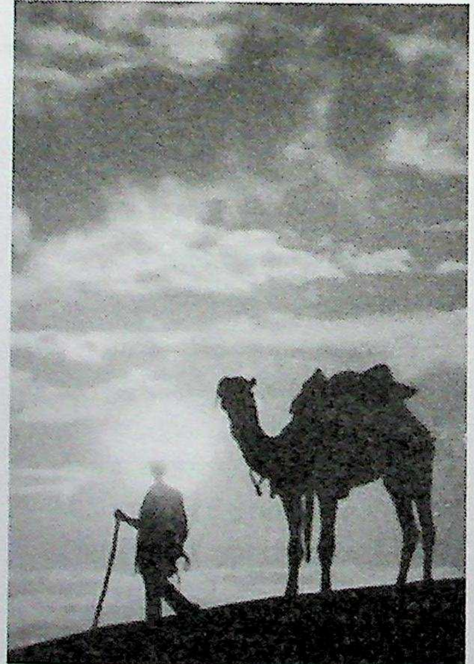
डी-504, फ्रीडम पार्क लाइन,
बी.पी.टी.पी., सैक्टर-57,
गुरुग्राम-122003 (हरियाना)
मो. - 09821479289

प्रवासी

- प्रतिभा गुर्जर

दूरी चाहे कितनी भी हो
वे चल पड़ते हैं . . .
नंगे पाँव, तपती धूप में,
अपनी गठरी सिर पर रख कर।
साथ में, न पीने को पानी
न खाने को खाना
न रुकने, ठहरने का ठिकाना!
आये थे, पेट की भूख मिटाने
रहने का आशियाना ढूँढ़ने
जी तोड़ मेहनत की
पर अचानक आया
क्रूर निर्मम राक्षस
हर किसी आशियाने पर
हुआ आक्रमण . . .
गूँज उठा कोरोना क्रंदन
देश-विदेश के कोने को
किया तहस नहस।
तभी तबाही मचाता
तूफानी हवाओं के साथ
आया 'अम्फान' और 'निसर्ग'
ऊँची-ऊँची लहरें
तेज हवा का शोर
उखड़-उखड़ कर गिरने लगे पेड़
भयंकर बारिश
सैकड़ों झुग्गियों की तबाही
क्षण में चारों ओर त्राहि-त्राहि
सब कुछ सहते, झेलते
निरंतर निर्भय
वे चलते रहे . . .
बच्चों का हाथ थामे
अनागत की ओर
वे चलते रहे।

ए-445, मान सरोवर कालोनी,
शाहपुरा, भोपाल-462039 (म.प्र.)
मो. 9993569083



ओ चीन

- देवेन्द्र कुमार मिश्रा



जन्म - 21 मार्च 1973
शिक्षा - एम.ए.।
रचनाएँ - लगभग साठ पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - देश भर की साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

चीनी अब तुम्हारी चाल नहीं चलेगी
तुम्हारी दाल भारत में अब नहीं गलेगी।
गोली चलाओगे तो गोली खाओगे
हमने बाय-बाय किया तो भूखे मर जाओगे।
बन्द तुम्हारी खरीदी, बन्द तुम्हारा व्यापार
अब की बार हो जाये आर या पार।
धोखेबाज, पीठ में छुरा घोंपने वाले
हम जान गये तुम्हारे काले इरादे।
बासठ नहीं बीस है दगाबाज
शांति नहीं, कृष्ण का सुदर्शन चलेगा आज।
शर्म आती है कि तुम पड़ोसी हो हमारे
वीरों की शहादत सहन नहीं करेंगे हम सारे।
बहिष्कार होगा तेरे हर सामान का
बात है अब भारत के सम्मान का।
मर जायेंगे लेकिन मिटा देंगे तुम्हें
शपथ है भारत माता की हमें।
शह पर तुम्हारे उछल रहे हैं मेंढक जैसे देश
उनका भी हिसाब करेगा भारत महादेश।
सहने-सुनने की सीमा हो चुकी तमाम
हो जाने दो अब बारूदी काली शाम।
अब समर की ठान ली है हमने
अति कर दी पैर पर कुल्हाड़ी मार ली तुमने।
एक इंच भी पीछे नहीं हटेंगे ओ चीन
तुम एक मारोगे, हम हजार मारेंगे समझ लो चीन

भरत नगर, चंदनगाँव
छिन्दवाड़ा-480001 (म.प्र.)
मो. - 9425405022

गीत

गुरु चरण

- प्रीति प्रवीण खरे



शिक्षा - बी.ए.बीएड., एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - लगभग चार पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - म.प्र. साहित्य अकादमी प्रादेशिक सम्मान सहित अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

सूरज नभ पे आएगा
उजियारा हो जाएगा
तम में चंदा चमकेगा
अँधियारा मिट जाएगा
गुरु के चरणों में जब भी
अपना शीश झुकाएगा
अँधियारा मिट जाएगा
गुरु के चरणों में जब भी . . .

हर फूल कहे काँटों से
तितली बोले बाग़ों से
खुशबू सारी महकेगी
पंछी बनकर चहकेगी
आशीष मिले पेड़ों का
पत्ता-पत्ता गाएगा
अँधियारा मिट जाएगा
गुरु के चरणों में जब भी . . .

भक्ति शक्ति की ये धारा
इससे सारा जग हारा
जीवन है गहरा सागर
ज्ञान का है पूरा गागर
माने सागर की महिमा
भव सागर तर जाएगा
अँधियारा मिट जाएगा
गुरु के चरणों में जब भी . . .

दूर किनारे हो जाएँ
दूर सहारे हो जाएँ
मझधारों में घिर जाओ
तूफ़ानों से डर जाओ
जर-जर चाहे कश्ती हो
पार तुम्हें ले जाएगा
अँधियारा मिट जाएगा
गुरु के चरणों में जब भी।। . . .

19, प्रथम तल, सुरुचि नगर,
मैनिट चौराहा के पास,
कोटरा सुल्तानाबाद,
भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो. - 9425014719

दोहे

- घमंडी लाल अग्रवाल



जन्म - 25 अक्टूबर 1954
शिक्षा - एम.ए. (हिन्दी), बी.एड.।
रचनाएँ - चार गीत-संग्रह, दो लघुकथा-संग्रह, दो ग़ज़ल-संग्रह, एक दोहा संग्रह, एक मुक्तक-संग्रह, एक हाइकु-संग्रह तथा 66 बाल पुस्तकें प्रकाशित हैं।
सम्मान - अनेक सम्मानों से सम्मानित।

सीखा हमने उम्र भर, सच्चाई का पाठ।
शब्द जम गए होंठ पर, देह हो गयी काठ।।

जो भी जैसा है दिखे, होता उससे भिन्न।
नेक आदमी में मिले, एक अजूबा जिन्न।।

सरसों पीली हो गयी, हरा हो गया धान।
फिर सम्पन्न किसान है, फिर कंगाल किसान।।

रिश्वत आई शहर में, लुप्त हो गया न्याय।
भोली जनता सह रही, पग-पग पर अन्याय।।

बूढ़े हिन्दुस्तान को, लगा अनूठा रोग।
मरते हैं कुछ लोग जब, जीते तब कुछ लोग।।

सत्य बोलते वो सदा, जब वो सत्ताहीन।
झूठ बोलने लग गए, अब वो सत्तासीन।।

टूटी बाबा की कमर, जोड़ा इतना अर्थ।
कल उसकी बिटिया जली, अर्थ गया सब व्यर्थ।।

रात दीपकों ने किया, खुलकर ये ऐलान।
दूर करेंगे तिमिर का, हम मिलकर अभिमान।

करते हैं कुछ लोग यों, जीवन का शृंगार।
एक आँख में नीर है, एक आँख अंगार।।

गाँव-गाँव में आ गयी, ऐसी शहरी पौन।
बेटों के सम्मुख हुआ, बाप एकदम मौन।।

आज आदमी कर रहा, खुलकर कत्लेआम।
चिड़ियाघर में सिंह सब, फरमाते आराम।।

आजादी ने ढक लिया, यों सारा परिवेश।
लगी मानने कोकिला, कौओं के आदेश।।

785/8, अशोक विहार,
गुरुग्राम-122006 (हरियाणा)
मो. - 9210456666

बाल पृष्ठ

गुरुवर के चरणों में

- प्रेमलता नीलम



जन्म - 1958।
जन्म स्थान - मुरगवाँ, जबलपुर (म.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए, बी.एड., पीएच.डी.।
रचनाएँ लगभग दस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - हिंदी काव्य शिरोमणि सहित देश-विदेश के अनेक सम्मानों से सम्मानित।

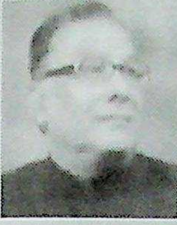
गुरुवर की कृपा से,
मिलता ज्ञान अपार।
जीवन को सुखमय करे,
है गुरुमंत्र आधार।।

गुरु पूर्णिमा पर्व से,
बढ़ता मन में उल्लास।
संकट बादल भागेंगे,
होगी पूरन आश।।

माता प्रथम गुरु है,
कहता सकल जहान।
माँ के ही संस्कार से,
बच्चे बने महान्।।

भारत वासियों को,
रहता यह अभिमान,
गुरु आशीर्वाद से ही,
मिलता है सम्मान।।

काव्य कुंज, बी-29, एलोरा
कॉलोनी, दमोह - 470661 (म.प्र.)
मो. - 9425406017



जन्म - 1954।
जन्म स्थान - पंडितपुर रानीगंज, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)
शिक्षा - बी.एस.सी।
रचनाएँ - तेरह पुस्तकें प्रकाशित।

बारिश, बंदर और बया

- ऋषिवंश

आसमान में छाये थे उस दिन बादल काले-काले।
उमड़ घुमड़ कर गरज रहे थे, जैसे हाथी मतवाले।।

रिमझिम-रिमझिम बरस रहा था बड़े सवेरे से पानी।
इन्द्रदेव ने जैसे मन में जलप्लावन की थी ठानी।।

दिखे नहीं थे सूर्यदेवता इधर शाम होने आई
रात लग रही थी दिन में ही, अँधियारी ऐसी छाई।।

खेत-बाग सब भीग चुके थे लथपथ पौधे-पेड़ सारे।
शाख-पात सब झूम रहे थे आँधी अंधड़ के मारे।।

बच्चों के संग चहक रही थी बया घोंसले में अपने।
तैर रहे थे सबकी आँखों में सुंदर-सुंदर सपने।।

बना घोंसला वर्षा के पहले का ही था नया-नया
बारिश भर का दाना-पानी था ही, खुश थी बहुत बया।।

चिंता की कुछ बात नहीं है, पावस भर बस गाना है।
कष्ट उठाया पहले अब तो बस आनंद उठाना है।।

नरम-नरम था-गरम-गरम था बना घोंसला अतिसुंदर।।
झूम रहा था डालों के सँग झूले जैसा इधर-उधर।।

थोड़ा-सा सिर बाहर करके सोचा देखूँ तो बाहर।
बाहर तो थी ठंड बहुत लेकिन गर्मी कितनी भीतर।।

एक डाल में चिपके भीगे बंदर मामा आये दीख।
कहा बया ने-बंदर मामा अब तो ले लो कोई सीख।।

पूरा साल मटरगश्ती में, खेलकूद में गवाँ दिया
मुझ को देखो, छोटी-सी हूँ पर सब कुछ है जुटा लिया।।

बारिश तो अब जमकर होगी ऐसे कब तक रह पाओगे।
चार दिनों में सर्दी से कँप-कँप कर तुम तो मर जाओगे।।

पहले कभी कहा था मैंने-मामा घर लो एक बना।
आने वाली ही बारिश है लेकिन तुमने नहीं सुना।।

मुझको देखो गर्म घोंसले में बैठी सुख से गाती।
मिलता ही यह सुख कैसे जो पीड़ा पहले नहीं उठाती।।

वैसे ही बंदर मामा दिन भर से काफी परेशान थे।
बात बया की सुन फड़काये गुस्से में वे नाक-कान थे।।

तोले भर की चिड़िया, तेरी हिम्मत मुझको सिखलाती है।
घास पात का जोड़ घोंसला मुझपर रोब जमाती है।।

रुकने दे बरसात चखाता हूँ मैं तुझको अभी मजा।
बेघर का दूँगा तुझको भी तेरी होगी यही सजा।।

बारिश थमने पर बंदर ने पकड़ घोंसला तोड़ दिया।
तिनके-तिनके अलग-अलग कर जल में नीचे छोड़ दिया।।

मूरख को उपदेश क्या दिया उल्टा ही परिणाम हुआ।
चार महीने की मेहनत का पल में काम तमाम हुआ।।

चलो बया इससे भी कुछ अच्छा खासा सीख लिया।
अपना ही सुख चैन छिनेगा ज्ञान मूर्ख का अगर दिया।

उत्तरायण मंदिर वाला घर,
डायवर्सन रोड, सिविल लाइन्स,
सतना-485001 (म.प्र.)
मो. -9425470840

समय और विचार- 6

चेतना का उत्सव और इवान इलिच

- रमेश दवे



वरिष्ठ साहित्यकार एवं शिक्षाविद।
जन्म - जून 1936।
रचनाएँ - पचास से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - कुसुमांजलि साहित्य सम्मान, सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

इवान इलिच एक ऐसा अहिंसक क्रांतिकारी, जो गाँधी और विनोबा का भक्त था। उसने संस्थागत मानसिक जड़ता के विरुद्ध वैचारिक विद्रोह किया फिर चाहे वह शिक्षा हो, स्वास्थ्य हो, जेण्डर अर्थात लिंग या लिंगभेद हो, पानी की समस्या हो या विज्ञान के वे उपकरण हों, जिन्होंने मनुष्य के आत्म-बल और उसकी स्वेच्छा का अपहरण कर उस पर सभ्यता के नाम पर, आधुनिकता के नाम पर और टेक्नालॉजी के नाम पर ऐसा बोझ लाद दिया कि मनुष्य अपने अस्तित्व को ही भूल गया। इलिच का विचार था कि वाहनों ने मनुष्य के पैरों की ताकत छीन ली। मशीनी तकनीक ने मनुष्य के हाथों के हुनर छीन लिए और मनुष्य के विरुद्ध एक प्रति-मनुष्य रोबोट के रूप में खड़ा कर दिया, यहाँ तक कि अब व्यक्ति अकेला हो, परिवार हो, या समाज, सब यंत्रों की पराधीनता जी रहे हैं, अपनी स्वाधीनता खोकर। सड़कें ही सड़कें मगर आदमी के लिए पैदल चलने की जगह छीन ली गई है या वाहनों ने मनुष्य को दुर्घटनाओं के जबड़ों में धकेल दिया है। सभ्यता का अर्थ हिसंक प्रगति या विकास तो नहीं है। सड़क, वाहन, घरों के सुविधा-यंत्र, दफ्तरों के मशीनी उपकरण, सबके सब सुविधा तो दे रहे हैं मगर मनुष्य का विश्राम छीन रहे हैं, उसकी सामाजिकता को अकेलेपन की ऊब में धकेल रहे हैं। स्कूल संस्था बन गए, अस्पताल संस्था बन गए, खेलकूद संस्था बन गए और सब अपनी-अपनी जड़ता के नियमों से बँध गए। प्रचार के आगे विचार का अंत होने लगा। ऐसे में क्या फिर कोई गाँधी जन्म लेगा?

इन विचारों के साथ इवान इलिच के चेतना के उत्सव को समझना होगा और सोचना होगा कि चेतना उत्सव है या सभ्यता की चिन्ता, चेतना, संवेदना है या आधुनिक जीवन की वेदना? इवान इलिच ने सभ्यता के हिंसक स्वभाव को ललकारा है।

अब प्रश्न यह है कि यह देशजता, ग्राम्यत्व और मनुष्य के स्वाभाविक प्राकृतिक जीवन से जुड़ा विचारक है कौन? आइए इवान इलिच को जानें। इवाज इलिच का जन्म वर्ष 1926 में आस्ट्रिया की राजधानी वियेना में हुआ था। उसका लालन-पालन यूरोप में हुआ। सांस्कृतिक विज्ञान का अध्ययन करने के बाद उसने इतिहास, दर्शन और धर्मशास्त्र में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। वर्ष 1950 में वह अमेरिका के न्यूयार्क नगर में आ गया जहाँ उसने पेरिश प्रीम्ट अर्थात् पादरी के रूप में काम किया जो आयरिश प्यूरेटो रिको के पड़ोस में था। पाँच वर्ष तक। उसने आगे के पाँच वर्ष भी प्यूरेटो रिको में बिताए। यहाँ से मुक्त होकर 1960 में वह मेक्सिको चला गया और 1969 में 'सेलेब्रेशन

आफ अवेअरनेस' नामक पुस्तक लिखी। इसके बाद 1971 में प्रसिद्ध पुस्तक 'डी-स्कूलिंग सोसाइटी' लिखी। इस प्रकार एक के बाद एक अनेक वैचारिक पुस्तक लिखकर वह एक ऐसा विचारक बन गया जिसने आधुनिकता के हिंसक स्वरूप को लेकर जेण्डर, एनर्जी एंड इक्विटी, एच-20 एण्ड द वाटर्स आफ फरगेटफुलनेस, द राइट टू युसफुल अनएम्प्लाइमेण्ट, शेडो वर्क, ए बी सी एल्फावेटाइजेशन आफ द पाप्यूलर माइंड, लिमिट्स टू मेडिसिन्स अर्थात मेडिकल नोमिसिस एवं अनेक वैचारिक क्रांति की पुस्तकें लिखकर समाज को बताया कि जिस सभ्यता में एक-दूसरे के प्रति गला काट कोड़ हो, संवेदना का अंत हो गया हो, शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, ऊर्जा आदि की संस्थाएँ जड़ता से ग्रस्त हों, वह सभ्यता क्या हिंसक सभ्यता नहीं है? इसलिए आवश्यक है कि समाज में चेतना का विस्फोट हो और चेतना मनुष्य का उत्सव बनकर एक ऐसे समाज की रचना करे जो हिंसक प्रतियोगी समाज न होकर सहिष्णु और संवेदनशील समाज हो।

इवान इलिच से मेरा पत्राचार था। उन्होंने अपनी पुस्तकों का एक सेट ही मुझे भेंट करवा दिया था। मैं जब 'पलाश' नामक शैक्षिक पत्रिका के संपादन से जुड़ा तो 'डी-स्कूलिंग सोसाइटी' का अनुवाद इन्दुप्रकाश कानूनगो से करवा कर पलाश में शृंखलाबद्ध प्रकाशित किया था और बाद में पुस्तक के रूप में मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी ने उसे प्रकाशित किया।

चेतना का यह उत्सव सर्वाधिक चर्चित हुआ, डी-स्कूलिंग सोसाइटी से। इस अत्यन्त उद्वेलित कर देने वाली पुस्तक में इलिच ने शिक्षा व्यवस्था के अध्ययन के बाद लिखा कि शिक्षा में तेजी से क्रांतिकारी परिवर्तन जरूरी हैं। उसका तर्क था कि स्कूल और विश्वविद्यालय भंग कर दिए जाएँ क्योंकि वे श्रेणीबद्ध और जड़ पाठ्यक्रमों से परिचालित होकर उपभोक्ता समाज की रचना के विचार से ग्रस्त हैं। इस कारण हम हमारे सांस्कृतिक उन्मेष और भविष्य के प्रति मौलिक रूप से कुछ न सोचकर जब तक शिक्षा प्राप्त करते हैं तब तक पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के जरिए ही सोचते रहते हैं। हम शिक्षा के नाम पर वर्णमाला के अक्षरों के गुलाम हो गए हैं और शिक्षा का अर्थ केवल अक्षर ज्ञान हो गया है। यह जड़ता शिक्षक, पालक, शिक्षानीति निर्माता, प्रशासक सबके दिमागों पर छा गई है। यहाँ मुझे गाँधी भी याद आते हैं, जो इलिच की प्रेरणा भी थे। गाँधी कहते थे साक्षर बना देने से क्या होता है- चाकू खरबूजे पर गिरे या खरबूजा चाकू पर। साक्षरता तो एक प्रकार से गला काटने के ही हुनर का काम कर रही है। शायद गाँधी के इसी विचार से इलिच ने स्कूल मुक्त शिक्षा का मंत्र दिया था। स्कूल मुक्त शिक्षा से तात्पर्य यह था कि एक बँधी-बँधायी लकीर से हटकर स्वतंत्र चेतना और विचार की शिक्षा हो। जहाँ न गला काट प्रतियोगिता हो, न ग्रेड या अंक, न निर्धारित और जड़ता ग्रस्त पाठ्यक्रम और न व्यवस्था का अनावश्यक हस्तक्षेप। स्कूल का संस्थाईकरण एक प्रकार से व्यापार की संस्था की रचना है और शिक्षा का एक नया ऐसा बाजार पैदा करना है जिसमें शिक्षा केवल कतिपय लोगों की सुविधा बनकर रह जाए।

इलिच ने स्कूल मुक्त शिक्षा का विचार तो दिया और तमाम देशजता एवं सामाजिक जीवन संवेदना की चर्चा करते हुए कम्प्यूटर तकनीक का समर्थन क्यों कर दिया यह भी समझना होगा। इलिच की मान्यता थी कि जब कम्प्यूटरों से लर्निंग वेब्स यानी शिक्षण संजाल बनाए जाएँ तो छात्र स्वयं सीखने की ओर प्रवृत्त होंगे और कम्प्यूटर नेट से साहित्य, विज्ञान, इतिहास एवं अन्य समस्त विषयों का अपनी

रुचि के अनुरूप अध्ययन कर सकेंगे। यहाँ यह विरोधाभास अवश्य है कि एक ओर इलिच वर्णमाला से मस्तिष्क के जड़ीकरण की बात करता है और दूसरी कम्प्यूटर नेट से पढ़ने की बात। क्या लिपि या अक्षर ज्ञान के बिना कम्प्यूटर नेट पर पढ़ना संभव होगा। सुना और देखा तो जा सकता है लेकिन लिपि ज्ञान के बिना शिक्षण संजाल से साहित्य, विज्ञान, कला आदि विषयों का पाठ कैसे संभव है? इसका हल इलिच ने नहीं सुझाया। केवल स्कूल भंग करके विश्वविद्यालय तक की शिक्षा को लर्निंग वेब से पढ़ने का विचार दिया। विश्वविद्यालय तक जाकर तो छात्र पढ़ने योग्य हो ही जाता है और अपनी रुचि एवं ज़रूरत के मुताबिक पाठ या पुस्तक चुन सकता है लेकिन प्रारंभिक शिक्षा के लिए तो लिपि ज्ञान चाहे वाक्य, शब्द या अक्षर प्रणाली के द्वारा दिया जाए, अत्यंत जरूरी है। इलिच ने साहित्य की धारा को भी इस विचार से प्रभावित किया था। एल्ड्युअस हक्सले ने भी अपने उपन्यास 'अवर ब्रेव न्यू वर्ल्ड' लिखकर इलिच और टॉफलर के विचारों को प्रेरित किया था या नहीं यह तो कह नहीं सकते मगर हक्सले और टॉफलर की द थर्ड वेव के विचार इलिच से काफी मिलते-जुलते हैं।

इलिच ने दूसरी पुस्तक से स्वास्थ्य के क्षेत्र में क्रांति कर दी। उसका कहना था कि अस्पताल उद्योग ने मरीज पैदा करने का काम किया और उसका प्रश्न था डॉक्टर्स किसकी सेवा करते हैं? क्या लोगों की ?नहीं। क्या मरीजों की? नहीं? क्या स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता पैदा करने के अभियान की? नहीं? तो फिर किसकी? इलिच कहता था डॉक्टर्स तो दवाई उद्योग की सेवा करते हैं। वे जो चिकित्सा ज्ञान शिक्षा से गृहण करते हैं, उसका अपहरण तो दवाई उद्योग कर लेता है और डॉक्टर्स वही दवाई देते हैं जो उन्हें दवाई उद्योग समझा देता है। इसलिए स्वास्थ्य एक प्रकार का दु:स्वप्न बन कर रह गया है। यह मेडिकल नेमिसिस यानी दवाई दु:स्वप्न मरीजों का इलाज न करके डॉक्टरों को शायद डीलर्स ऑफ डिसीजेस और सेलर्स ऑफ सिकनेस बना रहा है। इसके प्रति चेतना पैदा करना आवश्यक है। डॉक्टरी का पेशा जीवन रक्षा का पेशा है, वह मनुष्यता की संवेदना और मर्म का पेशा है। एक मरीज डॉक्टर के पास जीने की उम्मीद लेकर आता है न कि दवाई उद्योग को बचाने की। इलिच कहता है इलाज एक दु:स्वप्न हो गया है और धन की होड़ ने तन और मन दोनों को रोगी बना दिया है।

समाज में स्वस्थ मनुष्यों का होना, निरोगी जीवन जीना ही तो चेतना का उत्सव है। जब मनुष्य की चेतना पुनः प्रकृति की ओर लौटेगी तो प्राणवायु शुद्ध होगी, पर्यावरण जैसा शब्द निरर्थक होगा क्योंकि संसार प्रदूषण मुक्त होगा, जल शुद्ध, स्वच्छ होगा, ऊर्जा का समान बँटवारा होगा, लिंगभेद का स्त्री-पुरुष समानता के नाम पर पाखण्ड नहीं होगा, हम अपने जल संसाधनों को भूलेंगे नहीं और उनको जीवित रखेंगे, बेरोजगारी समस्या न होकर अपने लिए उपयोगी काम स्वयं खोजने का अवसर देगी, व्यावसायिक शत्रुता खत्म होगी और दिमाग तरह-तरह की जकड़नों से मुक्त होगा। जब ऐसा मानवीय और प्राणीमात्र के प्रति संवेदनशील समाज बनेगा तो उसकी चेतना उत्सव ही तो बनेगी।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सेलेब्रेशन आफ अवेअरनेस' में इलिच ने अनेक विषय उठाये हैं। आओ उत्सव मनाएँ, वह कहता है। किस बात का उत्सव? हिंसा को उसका चेहरा दिखा कर कहें कि क्या हिंसा मनुष्य और मनुष्यता का आईना है? हमारे अंदर व्यर्थ का बाहरीपन क्यों हो और हम अपने ही घरों में बाहरी या

विदेशी बन कर क्यों जियें? मौन की वाचिकता में हम जियें या मौन ही रहें। मौन की वाचिकता में विचार जियें या जड़ता? मौन को अपनी आवाज कैसे बनाएँ ताकि हमारे मौन को भी सुना जा सके? दान का सौन्दर्य और उसके प्रति उदासीनता को तोड़ने का अभियान क्यों न पैदा करें? चर्च या धर्मस्थलों के तंत्र को शक्तिहीन बनाकर पुरोहितीकरण या पादरीकरण के विरुद्ध चेतना पैदा करें ताकि समाज घोर अंधविश्वासों एवं पाखण्डों से मुक्त हो। स्कूलों की भीड़ निरर्थक है क्योंकि वे संस्थाई जड़ता के प्रतीक हैं, उसे हम पवित्र गाय की तरह न माने। लैंगिक सत्ता और राजनीतिक पुरुषार्थ के विरुद्ध चेतना पैदा करें क्योंकि आजकल नियोजित गरीबी अर्थात जानबूझकर गरीबी पैदा करने का षड्यंत्र है। उसके विरुद्ध चेतना और इन सबके लिए राजनीतिक संविधान के बजाय सांस्कृतिक संविधान की संरचना में यदि यह सब संभव हुआ तो वह चेतना का उत्सव होगा।

इवान इलिच कहता है कि मनुष्य की यौनवृत्ति भी तकनालॉजी की शिकार हो गई है। हम जब बोलते हैं तो हमारी भाषा हमेशा पुल्लिंग का प्रयोग करती है और स्त्रीलिंग को मुख्य संरचना का कर्त्ता या क्रिया नहीं मानती। इस कारण जेण्डर या लिंग भेद तो हमारी रात-दिन की भाषाई आदत में ही निहित है। ऐसे में केवल स्त्री-पुरुष बराबरी का पाखण्ड करने में तब तक क्या फायदा जब तक कि इस मानसिकता से मुक्ति न मिले। हम अपने अतीत से मुँह मोड़ कर आए भी तो कहाँ? क्या उस औद्योगिक समाज में नहीं जहाँ स्त्री-पुरुष उद्योगों के संसाधन मात्र हैं? और वहाँ भी स्त्री, पुरुष की तुलना में पीछे है। स्त्री के स्त्रीत्व को प्राथमिक अस्तित्व देने की चेतना ही समाज में सद्भाव रच सकती है और इसके लिए हमें एक नए अधिकार की भी रचना करनी होगी जिसे इलिच 'द राइट टू यूसफुल अनएम्प्लायमेंट' कहता है। अर्थात् उपयोगी बेरोजगारी का अधिकार। इससे उद्योग तंत्र के शोषण से मुक्त मनुष्य अपने श्रम से स्वयं अपना रोजगार पैदा कर सकेगा।

इलिच अपनी पुस्तक 'शेडो वर्क' में कहता है कि हम ग्राम्यत्व को असभ्यता न मानकर, उसको एक प्रकार की जीवन शैली मानें जो महत्त्वपूर्ण है और जिसका निर्वाह समाज भाषा और लोक व्यवहार में करता है। इसी प्रकार मनुष्य के जीने के अधिकार के लिए हमें एक अहिंसक युद्ध ही छेड़ना होगा ताकि भूख, बीमारी या हिंसा से कोई मौत न हो। शोध जनता करे बजाय कुछ लोग संस्थाओं या प्रयोगशालाओं में बैठकर करें और जनता को स्वयं शोध करने के अधिकार से वंचित कर दें। समाज में अनेक काम प्रच्छन्न या छद्म रूप से किए जाते हैं जो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देते, जैसे स्त्रियों के गृहणी के रूप में काम, कार्यस्थल पर सेवकों के काम और मुख्यधारा के नाम पर काट दिए गए हाशिए के लोगों द्वारा किए जाने वाले काम। वे छाया कार्य जब तक दृश्य या प्रत्यक्ष महत्व के कार्य नहीं बनते तब तक जीवन सुखमय कैसे हो सकता है?

साहित्य में विचार भी छद्म रूप से प्रवेश करते हैं बिना महात्मा गाँधी, मार्क्स, विवेकानंद या टॉल्सटाय का नाम लिए। साहित्यकार की खूबी यह है कि वह बुद्ध के विचार जानता है लेकिन बिना बुद्ध का नाम लिए वह रचना कर सकता है जैसे 'लाइट आफ एशिया'। साहित्यकार की चेतना में दुखान्त, सुखान्त सब संवेदना का उत्सव बन कर शब्द में उतरते हैं। इलिच ने जो विचार दिए वे आज के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक हैं या नहीं, यह तो कहा नहीं जा सकता लेकिन इलिच के सोच ने संसार को

प्रभावित अवश्य किया है। अगर सोल्जेनित्शिन केन्सरवार्ड लिख कर अस्पताल उद्योग का पर्दाफाश करता है तो क्या यह वही चेतना नहीं है जो इलिच के पास भी है। अगर भारतीय विचारकों में विवेकानंद और गाँधी दलित को दरिद्र नारायण कहकर मनुष्य को उसकी दुर्गति से मुक्त करते हैं तो क्या यह वही चेतना नहीं है जो इलिच की भी है? यदि उद्योगों के विरुद्ध खादी ग्रामोद्योग को महत्त्व देते हैं तो क्या यह मनुष्य को संसाधनीकरण से मुक्ति दिलाने का उपाय नहीं है? सच पूछा जाए तो इलिच ने जो सोचा वह गाँधी ने पहले ही सोच लिया था। इसलिए टॉफलर भी तो गाँधी को सेटेलाइट के समक्ष खड़ा कर देता है। इलिच तो स्वयं गाँधी वादी था। वह सेवाग्राम में रहा, विनोबा जी के परमधाम आश्रम में रहा, रामकृष्ण बजाज उसके मित्र थे।

इलिच को पढ़ना भी एक प्रकार से चेतना का उत्सव ही है। उत्तर आधुनिकता के पंडित भले ही कह दें कि इतिहास मर गया, मर जाने दीजिए, भारत तो स्मृतियों का देश है, यहाँ तो इतिहास पहले से मुर्दा था। साहित्य, साहित्यकार, पुस्तक सबको टेक्नालॉजी के उदर में डालकर हम यह कैसे कह सकते हैं कि मनुष्य की पुस्तक भूख समाप्त हो गई है। इलिच, टॉफलर, सार्त्र या साइमन द बुआवा कुछ भी कहें, भारत ने ग्रंथ संस्कृति की प्रथम खोज की है। इसलिए जब तक मनुष्य रहेगा वह पुस्तकों के द्वारा चेतना का उत्सव मनाता रहेगा। इलिच भारतीयता की उस संस्कृति का ही विचारक है जो संस्कृति मनुष्य के आनंद और उत्सव की संस्कृति है।

इवान इलिच विचार से तो क्रान्तिकारी है, लेकिन गाँधी की तरह विचार को कर्म का उत्सव बनाने के बजाय कम्प्यूटर को आधुनिकता का उत्सव बना दिया। गाँधी भी मशीन के उतने विरोधी नहीं थे मगर वे चाहते थे मशीन मनुष्य से उसका मनुष्यत्व न छीन ले। इलिच का सबसे बड़ा विरोध है किसी भी विचार का संस्थायीकरण करना। वह मानता था कि संस्थाएँ जड़ता पैदा करती हैं, विचार पर पाबंदी लगाती हैं और ज्ञान हो, शोध हो या प्रयोग सब संस्था में समाकर अपनी स्वायत्तता खो बैठते हैं। चेतना उत्सव तब बनती है जब मनुष्य और यह सम्पूर्ण जीव जगत, एक-दूसरे के प्रति संवेदनशील हों।

भारत तो एक उत्सवी देश है जहाँ जन्म से मृत्यु तक उत्सव ही उत्सव हैं। भारत ने जितनी ज्ञान चेतना उत्पन्न की, उतनी ही अगर कर्म चेतना भी पैदा कर दी होती तो किसी स्वच्छता अभियान, स्किल-यानी हुनर चेतना और मानवीय चेतना की उतनी जरूरत नहीं पड़ती। भारत ने बुद्ध दिए तो बुद्ध चेतना बने, गाँधी दिए तो गाँधी चेतना बने, सत्य, अहिंसा, शांति और प्रेम के विचार दिए तो विचार चेतना बने, यूरोप में ऐसी चेतना का अभाव था, इसलिए इलिच को चेतना का उत्सव यूरोप अमरीका के लिए कहना पड़ा क्योंकि वहाँ तो हिंसा, हथियार और युद्ध की ही चेतना पैदा होती रही है। भारत में संत और फकीर विचारक बने, पश्चिम में संतों का काम केवल धर्म-प्रवचन तक सीमित रहा। इलिच के विचार से भारत का पूर्ण रूप से सहमत होना तो संभव नहीं लगता मगर इतना तो अवश्य है कि हमारे मस्तिष्क को संस्थाईकरण की जड़ता से मुक्त करने के लिए चेतना का उत्सव हम तभी मना सकेंगे जब इलिच और गाँधी को विचार से कर्म में बदल सकेंगे।

एस. एच. 8/19 सहयाद्रि परिसर,
भदभदा रोड, भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो. 9406523071

पुस्तक-चर्चा

पुस्तक :	संघर्ष।
लेखक :	अमरेंद्र नारायण।
प्रकाशन :	राधाकृष्ण प्रकाशन,7/3 अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली
मूल्य :	300/-रु.

उपेक्षितों के पुरुषार्थ को उद्घाटित करता उपन्यास : संघर्ष

- पहाड़ी

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के उपन्यासों ने हिंदी जगत को अपने मोहपाश में कैसा बाँध लिया था कि लगभग चार दशकों तक साहित्य की चर्चा के केंद्र में उपन्यास ही रहे। निश्चय ही इस आकर्षण ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया था। लेकिन सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के साथ ही साहित्यिक रुचियों में भी बदलाव हुआ। उपन्यास की जगह कहानियाँ लोकप्रिय होती गईं। इसके पीछे समस्त सभ्यतागत परिवर्तन महत्त्वपूर्ण कारण रहे। वैज्ञानिक प्रगति की तेज रफ्तार ने मनुष्य के जीवन की रफ्तार को गति दे दी है। ऐसे में पढ़ने की रुचियों में परिवर्तन स्वाभाविक है।

इसका यह अर्थ नहीं कि प्रेमचंद जी के बाद अच्छे उपन्यास नहीं लिखे गए या नहीं लिखे जा रहे हैं। लेकिन जिस तरह साठ के दशक पर सामान्य पाठकों में भी उपन्यासों की चर्चा होती थी, वह अब केवल साहित्यिक गोष्ठियों या शैक्षिक पाठ्यक्रमों तक ही सिमट कर रह गई है। यह स्थिति अच्छी तो नहीं कही जा सकती, पर यह वास्तविकता है। आज यह चिन्ता व्यक्त होने लगी है कि कहीं साहित्य हाशिए में तो नहीं जा रहा? इस चिंता को टाला नहीं जाना चाहिए।

ऐसी परिस्थितियों के बीच एक अल्पज्ञात लेखक का उपन्यास 'संघर्ष' पढ़कर लगा कि यह इस विधा की उपादेयता और महत्त्व को स्थापित करने वाली कृति है। भूमिका में लेखक अमरेंद्र नारायण ने स्पष्ट लिखा है- 'संघर्ष का अर्थ टकराव नहीं है और हिंसा संघर्ष की अनिवार्यता नहीं है।' इस एक वाक्य में उपन्यास का मंतव्य स्पष्ट कर दिया गया है। पूरा उपन्यास पढ़ जाने के बाद पाठक समझ सकेंगे कि कथावस्तु को बुनते हुए लेखक किस निरपेक्ष भाव से अपनी मान्यता को प्रस्तुत करने में सफल हुआ।

कथा की आधार भूमि उस चंपारण नामक स्थान से प्रारंभ होती है जहाँ नील की खेती की बाध्यता ने किसानों को प्रताड़ित कर रखा था। उसके विरुद्ध चंपारण में जो आंदोलन हुआ था वही पूरे देश की आजादी के आंदोलन की। बुनियाद बना महात्मा गाँधी के अहिंसा सत्याग्रह की पृष्ठभूमि यहीं से तैयार होती है, लेकिन उपन्यासकार ने कथानायक के रूप में उन सामान्य लोगों को प्रस्तुत किया, जिन्होंने संघर्ष करते हुए चंपारण बिहार के सामान्य कस्बे को पूरे देश में लोकप्रिय बना दिया। दुर्भाग्य से यह परंपरा बन चुकी है कि आंदोलनों की

बुनियाद में खड़े व्यक्तियों की उपेक्षा कर दी जाती है। यह उपन्यास उसका प्रतिरोध करता है। सामान्य व्यक्तियों के योगदान की याद दिलाता है। लेखक का दर्द इन पंक्तियों में दिखाई देता है–'चंपारण की नई पीढ़ी के कई लोग वहाँ के योगदान के महत्त्व से अर्ध परिचित हैं।'

उपन्यास में बिहार के जन–जीवन में व्याप्त विरोधाभास को भी उजागर किया गया है। परिश्रमी और उद्यमशील लोगों, मेधावी और संस्कारवान लोगों का समूह भी है तो दूसरी ओर स्वार्थी और अपराध प्रवृति के लोग भी हैं। बिहार प्रदेश की राजनीति और पिछड़ेपन के कारणों की तलाश करने में लेखक ने सूझ–बूझ का परिचय दिया है। उपन्यास बिहार के पिछड़े प्रदेश के उन मजबूर और पीड़ितों की गाथा है जिन्हें लालच और दबाव में गुलामों की तरह उन द्वीपों में ले जाया गया जो 'सात समंदर पार' कहे जाते हैं। लेकिन उन द्वीपों को समृद्ध देश में परिवर्तित कर देने वाले ये गिरमिटिया भी बिहार के ही तो थे।

उपन्यास में वहाँ की संघर्ष गाथा को चंपारण के संघर्ष की बुनियाद से जोड़ने में अद्भुत कौशल दिखाया है। यह प्रश्न भी खड़ा किया गया है कि आज चंपारण के पिछड़ेपन के लिए कौन उत्तरदायी है? संघर्ष के दो समानांतर कोणों का निर्माण करते हुए लेखक ने पाठकों को संघर्ष के सही अर्थ को समझने की राह दिखाई है, यह स्पष्ट संदेश भी दिया है–'हर काल में, हर देश और हर समाज को, अपमान और उपेक्षा के एक अप्रिय इतिहास से होकर गुजरना पड़ता है, जब वह अपनी स्वभावगत सहनशीलता और शांतिप्रियता के कारण अन्याय और अत्याचार का बोझ ढोता है। जो समाज इस अन्याय का प्रतिरोध नहीं करता उसका पतन हो जाता है।'

लेखक का उद्देश्य उपन्यास की कथावस्तु का यथार्थ रोचक ढंग से प्रस्तुत करना ही होता है। वह समस्या के समाधान के पथ का संकेत भर कर सकता है। लेकिन इस उपन्यास में जिस बुनियादी बात को उठाया गया है, उसका संबंध एक पराधीन देश की विवशताओं से है। यहाँ अनुत्तरित प्रश्न यह रह जाता है कि स्वाधीन देश की (सिर्फ बिहार की नहीं) पीड़ा के कारणों की तलाश के लिए कौन उत्तरदायी है और उससे संघर्ष का स्वरूप क्या हो सकता है? लगता है कि लेखक सामाजिक आत्म–संघर्ष की आवश्यकता का निरूपण करने में संकोच कर गया है। पर इससे उपन्यास का महत्त्व कम नहीं हो जाता। यह उपन्यास भारतीय जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करने के साथ सामाजिक विसंगतियों का प्रामाणिक दस्तावेज है। हिंदी के पाठकों को उपन्यास वैचारिक ताजगी देता है।

0755-2738612

पुस्तक : समक्ष।
लेखक : मीनाक्षी जोशी।
प्रकाशन : विश्व हिंदी साहित्य परिषद, एडी-९४/ डी, शालीमार बाग, नई दिल्ली

समीक्षा और संस्मरण की कसौटी प्रस्तुत करती पुस्तक : समक्ष

पहाड़ी

मीनाक्षी जोशी का नाम अब हिंदी जगत में अपरिचित नहीं रह गया। लेखन, वक्तृत्व और समन्वयवादी दृष्टि के कारण उन्होंने अपने समकालीनों को शिक्षा के क्षेत्र में काफी पीछे छोड़ दिया है।

इसी वर्ष साक्षात्कारों की पुस्तक 'समक्ष' प्रकाशित हुई है। पुस्तक में लेखिका के संस्मरण और समीक्षाएँ भी शामिल हैं। विख्यात समीक्षक रमेश दवे ने भूमिका में लिखा है- 'मीनाक्षी ने इसे तीन प्रकल्पों में इस प्रकार रचा है कि तीनों प्रकल्प अपनी संपूर्ण अस्मिता के साथ पाठक को आमंत्रित कर रहे हैं।'



इन तीन प्रकल्पों को अपनी पूर्णता के साथ समाहित किये हुए कुछ विशेषताएँ स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। लेखिका के संस्मरण अधिकतर उनकी यात्राओं से जुड़े हैं। वे तारीख और स्थानों की गणना नहीं करतीं। बल्कि वे मनुष्य स्वभाव की विविधताओं को चिन्हित कर संवेदनशीलता के साथ उन्हें शब्दांकित करती हैं। बात गंगा आरती की करते हुए एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करती हैं-'हमें यह भ्रम दूर कर लेना चाहिए कि विश्व के 132 देशों में हम भारतीयों ने हिंदी को फैलाया है। . . . इसका श्रेय उन गिरामिटियों को है जिन्होंने हिंदी को अपनी शान समझा और वैश्विक स्तर पर उसका विस्तार करना अपना कर्तव्य समझा।'

संस्मरणों का महत्त्व इस बात में नहीं होता कि आप कितने व्यक्तियों से मिलते हैं, बल्कि घटनाओं के मर्म की तलाश किस सीमा तक करते हैं। इसी तरह 'मौन अभिव्यक्ति' को सर्वश्रेष्ठ भाषा क्यों मानती हैं, इसे संस्मरण से गुजरकर ही समझा जा सकता है।', 'अब क्यों

नहीं आते मोहनदास' ऐसा संस्मरण है जो लेखिका को यह टिप्पणी करने को बाध्य कर देता है- 'इला गाँधी (गाँधी जी की पौत्री) का पहला वाक्य मुझे ही नहीं, वहाँ उपस्थित अनेक भारतीयों को चकित कर गया-'सॉरी, आई कांट स्पीक इन हिंदी।' और इसी बिंदु पर लेखिका संस्मरण के शीर्षक को सर्थकता प्रदान करते हुए टिप्पणी करती हैं-'अब क्यों नहीं आते मोहनदास जो कह सकें-'मैं स्वदेशी भाषा में आपके समक्ष विचार प्रकट करूँगा और इसके लिए मैं क्षमा नहीं मागूँगा।'

संस्मरणों में यह सजगता प्रभावित करती है। दूसरे खंड में साक्षात्कार हैं जो लेखिका ने समय-समय पर हमारे समय के प्रमुख साहित्यकारों से लिये हैं। इन बड़े रचनाकारों से सार्थक साक्षात्कार तभी संभव होता है जब साक्षात्कारकर्ता ने उनको गहराई से पढ़ा ही न हो, बल्कि एक प्रश्नाकुलता के साथ उन्हें अंतस्थ किया हो। लेखिका कहीं आक्रामक तेवर नहीं अपनातीं, पूरी सौम्यता और शिष्टता से उनकी चारित्रिक उदात्तता को भी अभिव्यक्ति देती हैं। निस्संदेह इसमें लेखिका के स्वयं के संस्कार ध्वनित होते हैं। उन्हें समझने के लिये इसी खंड में स्वयं लेखिका के विभिन्न साक्षात्कार भी मौजूद हैं, जो विभिन्न पत्रिकाओं द्वारा प्रकाशित किए गए। सूर्यकांत नागर को दिये साक्षात्कार में वह कहती हैं-'मेरी प्रिय विधा समीक्षात्मक लेख है। यद्यपि इस विद्या में लिखने के लिए दिमाग का दही हो जाता है फिर भी मन को तसल्ली भी उतनी ही मिलती है। लिखने से पहले विषय से संबंधित सारी जानकारियाँ जुटाने के उद्देश्य से बहुत सारी किताबें पढ़ डालती हूँ।' इस वाक्य को पढ़कर भूमिका लेखक रमेश दवे के इस विचार की अर्थवत्ता समझ सकें। दवे जी ने लिखा-'यदि हिंदी का लेखक समुदाय अपने अध्ययन और अनुभव का सर्जनात्मक उपयोग करना चाहते हैं तो उन्हें केवल मूल रचना तक सीमित होकर नहीं, बल्कि उसके अनेक अनुषंगों पर भी काम करना होगा।'

एक लेखिका के लिये यह टिप्पणी ही सार्थकता का पैमाना है। हिंदी के रचनाकार इसे पढ़कर सही पथ का संधान कर सकते हैं।

0755-2738612

पुस्तक परिचय

- आशीष दशोत्तर

पुस्तक :	हवालात का मतलब।
लेखक :	ललित भाटी।
प्रकाशन :	पार्वती प्रकाशन, इंदौर (म.प्र.)
मूल्य :	80 /-रु.

हवालात का मतलब

श्री ललित भाटी की रचनाशीलता की एक नई कड़ी के रूप में प्रकाशित हुई है, उनकी क्षणिकाओं की पुस्तक, हवालात का मतलब। कई बार आभास होता है, कि जीवन की इतनी सूक्ष्मता से पड़ताल करना हर किसी के बस में नहीं होता है। इसके लिए पैनी दृष्टि भी होना चाहिए। जैसे एक क्षणिका में श्री भाटी कहते हैं-

उन पर आरोप था कि,
उन्होंने जिस थाली में खाया,
उसी में छेद किया है।
इस पर वे बोले,
जूठी थाली में कोई नहीं खाए,
बस इसीलिए मैंने प्रत्येक थाली में छेद किया है।

घर की बातों, पति-पत्नी के संबंधों पर भी श्री भाटी ने अपनी बातें कहीं हैं। एक क्षणिका में वे कहते हैं-

जो महिला अपने पति को
चौके, चूल्हे के
सभी कामों में सहयोग कराती है,
इस जमाने में वही आदर्श पत्नी कहलाती है।

एक और क्षणिका गौर करने के काबिल है-

बच्चे ने पूछा,
पापा मैं इतना बड़ा
कब हो जाऊँगा कि,
मम्मी से पूछे बिना ही
घर से बाहर जा सकूँ,
पापा बोले,
बेटा अभी तो इतना बड़ा मैं भी नहीं हुआ हूँ,
कि यह काम अपनी मर्जी से कर सकूँ।

पुस्तक :	स्वर्गवासी होने के सुख दुःख।
लेखक :	ललित भाटी।
प्रकाशन :	पार्वती प्रकाशन, इंदौर (म.प्र.)
मूल्य :	100/-रु.

स्वर्गवासी होने के सुख-दुःख

श्री भाटी का प्रकाशित व्यंग्य संग्रह, स्वर्गवासी होने के सुख दु:ख, चर्चा के केंद्र में है। इस संग्रह के माध्यम से वे समाज की विसंगतियों पर तीखा प्रहार करते हैं और उन विसंगतियों से समाज पर पड़ रहे प्रभाव को रेखांकित भी करते हैं।

स्वभाव से श्री भाटी विचारशील और प्रत्येक बात में कुछ बेहतरी ढूँढ़ने की प्रवृत्ति रखते हैं। इसलिए इनके व्यंग्य में यही विचारशीलता और खोजीपन नजर आता है।

पुस्तक के प्रारंभ में आशीर्वचन में प्रख्यात कवि श्री बालकवि बैरागी ने ठीक कहा है, कि व्यंग्य अशक्त को सशक्त बनाने का एक संस्कारशील अनुष्ठान है। यह एक तरह की शल्यक्रिया है। व्यंग्य की एक ही शर्त है, कि जिस पर व्यंग्य किया जाए, वह भी वाह-वाह कर उठे। व्यंग्य संग्रह में तेईस व्यंग्य हैं जो हर विषय को समेटते लगते हैं।

पुस्तक का प्रकाशन करने वाले पार्वती प्रकाशन के श्री जितेन्द्र चौहान भी बधाई के हकदार हैं, जिन्होंने सशक्त व्यंग्य को अपनी बेहतरीन छपाई और सुंदर आवरण से अधिक संप्रेषणीय बना दिया है।

12/2, कोमल नगर,
बरबड रोड, रतलाम (म.प्र.)।
मो.-98270 84966

समीक्षा

पुस्तक :	औरत बुद्ध नहीं होती।
लेखक :	अन्नपूर्णा सिसोदिया।
प्रकाशन :	दिव्य प्रकाशन, 26-ए नेमीनाथ कांवलीवाडी विले पार्ले पूर्व मुंबई-400057 (महाराष्ट्र)।

औरत बुद्ध नहीं होती

- राजेन्द्र सिंह गहलौत

जब किसी महिला रचनाकार द्वारा महिलाओं की मौलिक सहज अनुभूतिओं से समाज, परिवेश, घर, परिवार, रिश्ते, प्रेम, ममत्व, पुरुष, स्त्री की स्थिति, प्रकृति, स्त्री सुरक्षा कमोवेश पूरे जग को विश्लेषित करने का प्रयास किया जाता है तो उसकी रचनायें सिर्फ लुभाती ही नहीं चिंतन के लिए प्रेरित भी करती हैं। अन्नपूर्णा सिसोदिया के आलोच्य कविता संग्रह औरत बुद्ध नहीं होती की कविताएँ इन्हीं गुणों से लबरेज हैं।

आलोच्य कविता संग्रह की अधिकांश कविताओं का मूल स्वर स्त्रियों के अस्तित्व एवं अस्मिता के हर पहलू को रेखांकित करता है। स्त्री एक पहाड़ी नदी की तरह पुरुष रूपी सागर में समा कर उसे अपनी मिठास से भर देना चाहती है, लेकिन उसके खारेपन से वह खारी बन कर भी लड़की से औरत और औरत से माँ बन कर अपने सीने में मिठास की दो बूँदें समाये दाम्पत्य के कर्तव्य पथ पर चलती रहती है। उपमाओं में उसे उपमान ढूँढ़ने के लिये कहीं दूर नहीं जाना पड़ता, उन्हें वह अपने कार्यस्थल, रसोईघर में खाना पकाते हुये ही ढूँढ़ लेती है-

रोटी के साथ जब भी फूली थोड़ा खुशी से
अगले ही पल फटकार कर पिचका दिया
घी लगा कर और बंद हो गई
कटोरदान में सलीके से
काटा सब्जी के साथ
अपनी हर इच्छा को

पेशेवर नृत्यांगनाओं की विवशता तथा पगली की दीन दशा, बलात यौनशोषण से उस पर थोपे गये मातृत्व का रेखाचित्र भी कविताएँ खींचती नजर आती हैं। लेकिन जब कविताएँ स्त्री-पुरुष की अनुभूतियों, लेखन, कामनाओं एवं कर्तव्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करती हैं तो वे मनोविश्लेषक का रूप धारण कर लेती हैं -

'उसे पूरी दुनिया में थोड़ी सी मैं चाहिए था और मेरी पूरी दुनिया वही था।'

तथा 'एक पुरुष लिखता है क्योंकि उसे लिखना है सब कुछ सोच समझ कर लेकिन जब एक स्त्री लिखती है तो बस इसलिए क्योंकि उसे कुछ कहना है अपने मन का'

जैसी कविताओं की ये पंक्तियाँ पुरुष और स्त्री की मानसिकता का अंतर स्पष्ट करती नजर आती हैं। जबकि 'औरत बुद्ध नहीं होती' कविता पुरुष की महानता, ज्ञान प्राप्ति हेतु घर, पत्नी, बच्चे के त्याग पर प्रश्न चिन्ह लगाती हुई, स्त्री के घर, पति, बच्चों के प्रति मोह के महत्त्व को स्थापित करती नजर आती है-

'वह जब माँ होती है तो और कुछ नहीं होती
इसलिए औरत बुद्ध नहीं होती
बनी रहती है जीवन पर्यन्त
सांसारिक मोहमाया से घिरी
बस एक औरत'

संग्रह की कविताएँ स्त्री जीवन के अतिरिक्त प्रकृति चित्रण, आजादी और कर्त्तव्य, मजदूरों की महत्ता और व्यथा, गरीब आम व्यक्ति का जीवन, धर्म,भाषा, जाति, पंथ तथा राजनैतिक दलों के झंडों में लिपटा शहर, मीडिया तथा कुछ चुनी हुई संवेदनाएँ, बच्चों से छिनता शैशव, एकाकीपन से प्रेम आदि पहलुओं पर भी कभी व्यंजना में तो कभी भावनाओं के आवेग से अपनी बात कहती नजर आती हैं।

सिंह प्रिंटिंग प्रेस,
बुढ़ार-484110 शहडोल (म.प्र.)

दिमाग वालो सावधान

पुस्तक : दिमाग वालो सावधान
लेखिका : धर्मपाल महेंद्र जैन
प्रकाशन : किताबगंज प्रकाशन,
गंगापुर सिटी. (राज.)

- शांतिलाल जैन

व्यंग्य विधा में इन दिनों एक अजीब सी स्थिति दिखाई पड़ती है। बहुत से लेखकों द्वारा, बहुत तेज़ी से और बहुत अधिक व्यंग्य लेख लिखे जा रहे हैं। इस भीड़ में पठनीय व्यंग्य काफी हद तक सिकुड़ता जा रहा है। इस समय जब व्यंग्य के नये मानक गढ़ने की जरूरत है, मानक बचाये रखने की जरूरत ज्यादा बड़ी लगने लगी है। ऐसे में वरिष्ठ व्यंग्यकार धर्मपाल महेंद्र जैन का सद्य प्रकाशित दूसरा व्यंग्य संग्रह 'दिमाग वालो सावधान' कुछ सीमा तक आश्वस्ति प्रदान करता है।

वे सात समंदर पार, कनाडा, के रहवासी होकर भी अपनी मिट्टी से सतत् जुड़े रहते हैं। भारत में घट रही छोटी से छोटी घटना पर उनकी पैनी नज़र है और उसमें अन्तर्निहित विडंबनाओं पर वे दम से प्रहार करने में चूकते नहीं हैं। ताज़ा दम घटनाओं, जैसे चंद्रयान-3 से लेकर सबरीमाला तक हर घटना पर उनकी लेखनी चली है। चयनित विषयों की एक लम्बी रेंज से पाठक गुजरता है। हिंदी की दुर्दशा पर, साहित्यकारों की राजनीति पर, नेताओं की कारगुजारियों पर, छीजते सामाजिक मूल्यों पर, परस्पर व्यवहार में आ रही गिरावट पर लेखक ने पैने प्रहार किये हैं।

संग्रह की हर रचना अपने विषय के इर्दगिर्द ही बुनी गई है। संग्रह की शीर्षक रचना 'दिमाग वालो सावधान' में वे उन प्रवृत्तियों पर प्रहार करते हैं जो अनावश्यक रूप से दूसरों का समय व्यर्थ की बातों में ख़राब करते हैं। वे लिखते हैं-चाटन एक महान कला है, चाटन अद्भुत विज्ञान है,चाटक बेचारा बोलकर कितना चाटता। अब कोई गाकर चाटता है, लिखकर चाटता है, वाट्सऐप पर चाटता है, फेसबुक पर चाटता है। एक अन्य रचना 'वे धन्यवाद नहीं ले रहे' में वे लिखते हैं-'सफल होने के लिये, साहित्यकार के पास अपना संपादक होना ही चाहिये। जिनके पास घरेलू सम्पादक न हों, उन्हें तदर्थ संपादक रख लेना चाहिये। हिंदी साहित्य में 'वह' की भूमिका पर खूब लिखा गया है, उसे पढ़ना चाहिये।'

धर्मपाल जी की रचनाओं में कटाक्ष के साथ एक सहज हास्यबोध भी है। उनकी रचनाओं के शीर्षक उत्सुकता जगाते हैं, मसलन-साहब का दिमाग, वे इशारा देकर चले गये, वे ब्यूटीफुल थीं, बापू का आधुनिक बन्दर, स्पीड डेटिंग : नो नमूने प्लीज आदि। संग्रह में एक रचना नाटक के फ़ॉर्मेट में लिखी गयी है-'सरकारी सौजन्य से हिंदी डे'। फॉर्मेट निभाने के फेर में यह रचना न नाटक बन सकी है न लेख। कुछेक रचनाओं में इंटरव्यू और बातचीत का प्रयोग किया गया है, उनके उत्तर में व्यंजना शक्ति का प्रयोग हुआ, लेकिन बहुतेरे लेखों में लेखक सीधे नरेट करता चलता है। इससे सपाट बयानी परिलक्षित होती है। वर्तनी की कतिपय त्रुटियाँ खलती हैं।

संग्रह की भाषा सरल और प्रवाहमयी है। लेखक मध्यप्रदेश में आदिवासी बहुल क्षेत्र में पढ़े-बढ़े इसीलिये उनकी रचनाओं में स्थानीय शब्द स्वत: सहज रूप में आये हैं। वे एक सजग व्यंग्यकार हैं। अपने समय, समाज की विसंगतियों को पकड़कर उन्होंने मारक प्रहार किये हैं। तंज़ हर रचना में उकेर पाने में लेखक सफल रहा है।

बी-8/12, महानंदा नगर,
उज्जैन-456010 (म.प्र.)
मो. - 9425019837

पत्रांश

◆ चिनार के पत्तों का खूबसूरत कलेवर लिए 'अक्षरा' का जुलाई अंक मिला। देखकर खुशी इसलिए भी ज्यादा हुई कि यह पृष्ठ उत्साह का संचार करता है। जिस कोरोना काल से हम गुजर रहे हैं वह बहुत निराशा पैदा करने वाला है। ऐसे में 'अक्षरा' का सम्पादकीय और कई कवितायें तथा लेख पढ़कर उम्मीद की एक किरण जरूर नजर आती है। हमेशा की तरह आदरणीय पंत जी का सम्पादकीय 'वर्तमान संकट की भावी चुनौतियाँ' पढ़कर, मन हर बात को झुठला कर खुद से ही कहना चाह रहा है कि 'जीत जायेंगे हम'! आदरणीय रमेशचन्द्र शाह जी, सूर्यप्रसाद दीक्षित जी के लेख पढ़ कर बहुत अच्छा लगा। मेरे प्रिय कवि सुमित्रानंदन पंत जी के ऊपर बहुत संग्रहणीय जानकारी मिली। इस तरह के लेख पढ़ना बहुत आवश्यक है जिनको पढ़कर हम अपने अन्दर पनप रहे कोरोना के डर को दूर कर सकें। साहित्य मन में ऊर्जा भरता है। इसके लिए निश्चित ही 'अक्षरा' की सम्पादकीय टीम बधाई की हकदार है, जो इन विषम परिस्थितियों में भी 'अक्षरा' का एक अच्छा अंक पढ़ने को हमें दे रही है। काव्य प्रतियोगिताओं की कवितायें और लघुकथा प्रतियोगिता की लघुकथाएँ पढ़ने को मिलीं! अंत में यही प्रार्थना करना चाहती हूँ कि मुख्यपृष्ठ पर उड़ रहे, चिनार के इन पत्तों की तरह कोरोना काल की विदाई भी अब शीघ्र हो जाए। आपका संपादकीय और 'अक्षरा' का पूरा अंक बहुत बढ़िया है।

- अनीता सक्सेना, भोपाल (म.प्र.)

◆ सूर्य की सुनहली किरणों सा सुनहला कवर पृष्ठ लिए 'अक्षरा' का जुलाई अंक नये उत्साह का संचार कर गया। आदरणीय दादा पंत जी की पैनी दृष्टि से जड़ित जहाँ समसामयिक संपादकीय है वहीं सभी आलेख धैर्य, संतोष व प्रकृति के साथ सामंजस्य की बहुमूल्य सीख देते हुए पाठकों को अवश्य जागरूक करेंगे। दार्शनिक सोच को विस्तार देता सबद निरन्तर हमेशा की तरह अनुपम है। लघुकथाएँ व कविताएँ गागर में सागर की तरह उपस्थित हैं। जहाँ वंदना मुकेश की कहानी चमत्कृत कर गई, वहीं कह मुकरी की शरारत मन को गुदगुदा गई। उत्कृष्ट अंक के लिए संपादक मंडल को बहुत-बहुत बधाई।

- शीला मिश्रा, भोपाल (म.प्र.)

◆ साहित्य समाज का दर्पण मात्र न होकर नेवीगेटर अर्थात् दिशा दर्शक है, यह तथ्य बखूबी उभरा है। नवीनतम 'अक्षरा' के संपादकीय में यही सत्य तथा तथ्य तो वर्षों पूर्व समझाया था। लड़खड़ा कर गिर रहे नेहरू को सँभालते हुए रामधारी सिंह दिनकर ने यह कहते हुए कि 'जब-जब राजनीति गिरती है तो साहित्य को ही उसे सँभालना पड़ता है।'

नकारात्मकता तथा सकारात्मकता के सुर, असुर संग्राम के इस दौर में सत्य के पक्ष में खड़े रहकर सच्चाई की जीत सुनिश्चित करने का पावन प्रयास परिलक्षित हैं, इस अंक में। हार्दिक साधुवाद।

साहित्य को जन से जोड़कर शक्ति संपन्न बनाने की दिशा में आपकी तथा आपके सहयोगियों की समिधा सफलता का नया प्रतिमान रचेगी। बधाई स्वीकार कीजिए।

- विजय जोशी, भोपाल (म.प्र.)

◆ 'अक्षरा' का मई-जून, 2020 अंक मिला अंक मिलते ही पहली दृष्टि संपादकीय पर जाती है। कोरोना ने आपको एकांत में रहकर अध्ययन चिंतन का पर्याप्त अवसर प्रदान किया है। पिछले अप्रैल 20 अंक में आपके हिंदी उपन्यासों की चर्चा करते हुए दो नए उपन्यासों का विशेष रूप से उल्लेख कर नए चिंतन की आवश्यकता प्रतिपादित की थी। इस नए अंक में आपने जयशंकर प्रसाद की कामायनी का गहन चिंतन कर उसका दार्शनिक दृष्टिकोण युग के संदर्भ में व्यवहारिक पक्ष के साथ प्रस्तुत कर अंतर जगत के अंतर्विरोधों को समझने के साथ ही मानवता की सुरक्षा और विकास की आवश्यकता प्रतिपादित की है। संकट के इस समय समरसता की जरूरत है ताकि विलास की संभावनाओं से बचा जा सके।

अंक का पहला लेख 'धरोहर' के रूप में निर्मल वर्मा का है। उन्होंने लेख में उस घटना का उल्लेख किया जिसमें उनकी माँ ने कुछ पैसे देकर नदी में डलवाए थे। यह भारतीय संस्कृति के बीज संस्कार हैं जो परिवार से मिलते हैं। यही संस्कार आगे चलकर व्यक्ति को समाज देश, मानवता और राष्ट्र तथा मातृभूमि की महत्ता समझने

में सहायक होते हैं। वर्मा जी के लेख का मुख्य प्रतिपाद्य यही है। लेख बहुत अच्छा है।

करुणाशंकर उपाध्याय, पुनीता जैन, दादूराम शर्मा के लेख अच्छे हैं। शर्मा जी का लेख पढ़कर मुझे अपने गाँव संबंधी लेख की याद आ गई। रमेश दवे का एल्विन टॉफलर संबंधी लेख तथा नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की शंकराचार्य संबंधी ग्रंथ की विस्तृत समीक्षा विशेष रूप से पठनीय हैं। टॉफलर की भाषी कल्पनायें युग परिवर्तन की घोषणा करती हैं जो पूरी तरह सत्य भले ना हों, पर अभी ही कुछ संकेत मिलने लगे हैं। उपाध्याय जी की समीक्षा विद्वतापूर्ण है। उन्होंने पुष्पा रानी गर्ग के ग्रंथ की परिचयात्मक समीक्षा की है और विशिष्ट बिंदुओं को उदाहरण सहित रेखांकित किया है। समीक्षा के साथ वह एक स्वतंत्र लेख भी है। श्री रामेश्वर मिश्र पंकज जी की संधान सिंधु की समीक्षा भी उल्लेखनीय है।

कहानियों का चयन अच्छा है परंतु निधि देउस्कर की कहानी देर तक गूँजती रहती है। कविताओं में सूर्य प्रकाश मिश्र, मयंक श्रीवास्तव, गोविंद श्रीवास्तव, निशांत की कविताएँ अच्छी लगीं। कुल मिलाकर अंक अच्छा है।

- गंगा प्रसाद बरसैंया, इंदौर (म.प्र.)

◆ मुख पृष्ठ सहित जुलाई अंक बहुत सुंदर बन पड़ा है। संपादकीय और डॉ. शशिभूषण शीतांशु जी का लेख अप्रतिम है।

- मधुकर देशमुख, पुणे (महा.)

◆ मई-जून अंक का संपादकीय पढ़ कर बहुत अच्छा लगा। शाश्वत-सार्वभौम जीवन मूल्यों की साधना भारत का परिचय है, और उस भारत से बढ़ता गहराता अलगाव हमारी विडंबना!

- राजीव वोरा, दिल्ली

◆ कोराना पर दो लेख बहुत प्रासंगिक हैं।

- अंबिकादत्त शर्मा, सागर (म.प्र.)

◆ बहुत सुंदर कलेवर और उतने सुरुचिपूर्ण शब्दों के तेवर,जय सियाराम दादा, सबको नमस्कार।

- वीरेंद्र याग्निक, मुम्बई (महाराष्ट्र)

◆ 'अक्षरा' का संपादकीय बहुत सार्थक व सटीक है।

- साधना बलवटे, (म.प्र.)

◆ 'अक्षरा' पर वीणा के जून-जुलाई के संयुक्त अंक में प्रकाशित लेख दो कारणों से महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक है। प्रथम यह कि यह वीणा जैसी पुरानी, सुस्थापित और प्रतिष्ठित पत्रिका में छपा है। दूसरा यह कि इसके लेखक द्वय सोनाली नरगुंदे एवं मनीष काले पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर जैसे विश्वस्त और प्रतिष्ठित संस्थान में महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन हैं। 'अक्षरा' को स्वयं पर गर्व करने का अधिकार है।

-चन्द्रशेखर पन्त, इन्दौर (म.प्र.)

◆ आपके संपादन में साहित्यिक पत्रिका 'अक्षरा' का कलेवर नित नई ऊँचाई प्राप्त करने में अग्रसर है। विस्तृत और सशक्त आलेख एवं साक्षात्कार हेतु 'अक्षरा' परिवार को हृदय से बधाई एवं शुभेच्छा!

- प्रीति प्रवीण खरे, भोपाल (म.प्र.)

◆ नये विचारों से सज्ज 'अक्षरा' का जुलाई अंक 184 हाथ में है। पूरा पढ़ डाला। आलेख अत्यधिक प्रभावशाली हैं। पत्रिका राष्ट्र और समाज के साथ-साथ हिन्दी भाषा के प्रति समर्पित भाव से आपके प्रभावी नेतृत्व में जिम्मेदारी निभा रही है।

- अरविंद पाठक, भोपाल (म.प्र.)

◆ इस अद्भुत मार्च अंक के अभी तो सिर्फ एक आलेख और संपादकीय ही पढ़ा है। दोनों बहुत अच्छे लगे। शिक्षा की भारतीयता बहुत अच्छा लगा। धन्यवाद एवं बधाई।

- सीमा जैन, ग्वालियर (म. प्र.)

◆ 'अक्षरा' मई-जून, 2020 का संयुक्तांक प्राप्त हुआ। श्री कैलाशचन्द्र पंत ने सम्पादकीय में 'सभ्यता के अन्तर्विरोधों को समझने का अवसर' जयशंकर प्रसाद की कामायनी के प्रथम सर्ग से उपसंहार तक की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए उजागर किया, जो नमनीय है।

- देवकीनन्दन 'शांत', लखनऊ (उ.प्र.)

♦ 'अक्षरा' पत्रिका के दो अंक अप्रैल एवं मई-जून 2020 मिले। कुछ रचनाएँ पढ़ीं भी। अपनी प्रसन्नता को प्रकट कर पाना मेरे लिए आकाश कुसुम सा प्रतीत होता है। कोविड-19 से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण ऐसा लग रहा था कि अब पत्रिकाओं को सामने देख पाना और पढ़ पाना संभव नहीं हो सकेगा। 'सूखी आँखों वाली' कहानी अच्छी लगी। किशनलाल जी की दोनों लघु कथाएँ बहुत अच्छी हैं। उनके व्यंग्यात्मक स्वर दूर तक झकझोर देते हैं। छपास का भयंकर रोग और नर्मदा के तीर ये दोनों रचनाएँ भी अच्छी लगीं। अंक की कविताएँ प्रभावित करती हैं। एक बात विशेष रूप से कहना चाहूँगा, वह है हृदय की गहराई से लिखा गया अंक का संपादकीय। प्रसाद जी की 'कामायनी' के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान की व्याख्या, वाह आनंद आ गया। 'विज्ञान वरदान या अभिशाप' इस विषय पर कई परीक्षाओं में निबंध लिखा होगा। वैसे अब निबंध लेखन अपने दिन ही गिन रहा है। उसका स्थान अनुच्छेद लेखन ने ले लिया है। सुख, सुख और सुख की होड़ में ऐसा लग रहा है, अब विज्ञान की डोर मानव के हाथों से छूट चली है और वह हम पर हावी होता जा रहा है। इस सुन्दर अंक के लिए बधाई।

- जयन्त कुमार, पटना (बिहार)

♦ 'अक्षरा' का मई-जून, 2020 अंक मिला। पिछले लगभग चार-पाँच माह से कोरोना सम्बन्धित अनेक रचनाएँ पढ़ी हैं। कविता, कहानी हो या लेख, सबमें विषय वस्तु लगभग एक समान ही देखने को मिली किंतु इस अंक के संपादकीय 'सभ्यता के अंतर्विरोधों को समझने का अवसर' पढ़ कर चकित रह गई। जयशंकर प्रसाद की कामायनी न जाने कितने साहित्य प्रेमियों की प्रिय पुस्तक होगी, पर ऐसा अद्भुत तुलनात्मक विवेचन और वर्तमान विपत्ति की परिस्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण, सटीक उदाहरणों सहित शायद ही किसी की कल्पना में आया हो। रचनात्मक लेखन की यही तो खासियत है कि इतिहास की उस महत्त्वपूर्ण कड़ी को समकाल से जोड़ना, जो उसे और अधिक प्रासंगिक बना दे। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में ही इस संपादकीय को दो पंक्तियों से जोड़ना चाहती हूँ-

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की, एक-दूसरे से न मिल सके, यही विडम्बना इस जीवन की' अन्य सभी स्तंभ एवं रचनाएँ हमेशा की तरह प्रशंसनीय। साधुवाद संपादक मंडल को।

- मीनाक्षी जोशी, भंडारा (महा.)

♦ कोरोना महामारी के कारण मार्च माह के बाद मुझे राजधानी दिल्ली से प्रकाशित होने वाली कोई भी साहित्यिक पत्रिका जुलाई माह तक प्राप्त नहीं हुई। नर पशु शी जिनपिंग के कारण दिल्ली में डाक सेवा प्रतिबंधित है क्योंकि वहाँ कोरोना ने उग्र रूप धारण किया हुआ है। परंतु वाराणसी से प्रकाशित होने वाली पत्रिका सोच-विचार के अप्रैल-मई-जून के 3 अंक एक साथ जून माह में प्राप्त हुए। इसी प्रकार मुझे 'अक्षरा' का अप्रैल माह का अंक, मई - जून का संयुक्तांक जून माह में ही डाक द्वारा प्राप्त हुए। नि:संदेह 'अक्षरा' का संपादक मंडल इस दृष्टि से प्रशंसा का पात्र है।

इस विषय में कोई संदेह नहीं कि 'अक्षरा' एक ऊँचे स्तर की पत्रिका है। विशेष रूप से इसमें प्रकाशित आलेख मनोमस्तिष्क पर अपना स्थाई प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं। अप्रैल अंक में प्रकाशित 'हमारी शिक्षा की पुन:प्रतिष्ठा कैसे हो' आलेख इस बात का सशक्त उदाहरण है। इसके लेखक श्री रामेश्वर मिश्र पंकज एक स्थान पर कहते हैं-'कम्युनिस्ट देशों को छोड़ कर संसार के किसी भी देश में शिक्षा राज्य के द्वारा निर्धारित नहीं होती। वह समाज के द्वारा ही निर्धारित एवं संचालित होती है। भारत के राज्यकर्ताओं ने अल्पसंख्यकों को विशेषकर मुसलमानों और ईसाइयों आदि को तो यह शक्ति दे रखी है कि वे सरकारी खजाने से अपने-अपने पंथों की शिक्षा दें। परंतु हिंदुओं को बलपूर्वक और योजना पूर्वक अपने पूर्वजों की ज्ञान परंपरा की शिक्षा देने से रोक कर

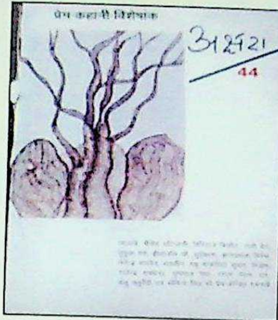
रखा गया है।' इसी प्रकार श्री कल्याण प्रसाद वर्मा का आलेख 'हिंदी के पाणिनि : आचार्य किशोरी दास वाजपेयी' एक अन्य ज्ञानवर्द्धक तथा लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्ध होने की सीख देने वाली सरस रचना है। इसी प्रकार विदुषी श्रीमती निशा तिवारी ने अपनी रचना 'हिंदी साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव' द्वारा भी इस अंक को जीवंतता प्रदान की है। श्रीमती सुषमा मुनींद्र कहानीकार के रूप में मुझे सदैव प्रभावित करती रही हैं। इस अंक में प्रकाशित उनकी कहानी 'अनर्थ का अर्थ' भी अच्छी थी। परंतु मैं उनके जैसी समर्थ कथाकार से भविष्य में किसी कालजयी रचना की अपेक्षा करता हूँ। शेष श्री राजनारायण बोहरे की 'उम्मीद', श्री आर.एस. खरे की 'तिमोथी' तथा रश्मि बड़थ्वाल की 'श्मशान पथ पर' नामक कहानियाँ भी भावपूर्ण हैं। श्री किशोर काबरा के गीत व श्री राधेश्याम शुक्ल की कविताएँ सरस तथा कर्णप्रिय हैं। श्री सुदर्शन कुमार सोनी का व्यंग्य 'टाँग टूटने के फायदे' इस अंक की सशक्त रचना है।

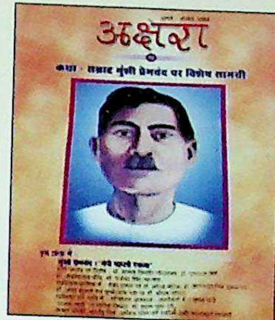
'अक्षरा' का मई-जून (संयुक्तांक) अंक भी कुछ विशिष्ट आलेखों के कारण अद्वितीय है। विशेष रूप से श्री निर्मल वर्मा की रचना 'मेरे लिए भारतीय होने का अर्थ' अत्यंत ज्ञानवर्द्धक तथा प्रेरक है। इस युग के महानतम दार्शनिक श्री जिद्दू कृष्णमूर्ति (जे. कृष्णमूर्ति) से संबंधित वरिष्ठ साहित्यकार श्री रमेशचंद्र शाह का आलेख 'नोटबुक : जे कृष्णमूर्ति' मन को आनंद विभोर कर देने वाली रचना है। वस्तुत: श्री जे. कृष्णमूर्ति की भाषा तथा भावाभिव्यक्ति बहुत सुंदर है। वे मन को शांत कर देने वाली ऐसी प्राकृतिक दृश्यावलि प्रस्तुत करते हैं कि मनुष्य उसमें रम जाता है। श्री करुणाशंकर उपाध्याय का आलेख 'रामचंद्र शुक्ल के कबीर संबंधी मूल्यांकन का पुनर्पाठ' बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ी जाने वाली विद्वतापूर्ण रचना है। श्री अंकुश्री ने अपनी कृति 'नाटक और उसकी लोकमंचीय विशेषतायें' का सृजन बड़े मनोयोग से किया है। उनके आलेख द्वारा ज्ञात हुआ कि लोक गायक भिखारी ठाकुर मूलत: हज्जाम थे। जिन्हें आम बोल-चाल की भाषा में नउआ ठाकुर कह दिया जाता है। यद्यपि मेरा ख्याल था कि भिखारी ठाकुर राजपूत थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत में नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि आदि तथा विदेशी नाटककारों यथा शेक्सपियर, एडीशन,ऑस्कर वाइल्ड, इब्सन व हिंदी नाटककारों डॉ. रामकुमार वर्मा, सेठ गोविंद दास उपेंद्रनाथ आदि के विचारों का इसमें समावेश किया है। नाट्यकर्मियों का मार्गदर्शन करने की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना है। एक अन्य सशक्त रचना है श्रीमती अनीता मलगांया की 'बाल कथाओं में मनोविज्ञान'। इस रचना द्वारा ज्ञात हुआ कि बालक के विकास की चार अवस्थायें हैं-शिशु अवस्था, बाल्यावस्था, तरुणावस्था व किशोरावस्था। उनका कहना एकदम उपयुक्त है कि-सही मायने में बाल साहित्य बाल मन की खुशियों को सुलझाने और उसे जीवन मूल्यों से जोड़ने का एक नायाब जरिया है। प्रवासी कलम से नामक स्तंभ के अंतर्गत श्रीमती सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'वह जिंदा है' एक ममतामयी माँ की अत्यंत मर्मस्पर्शी कथा है। इस कहानी से यह सिद्ध होता है कि सत्य के प्रति अंधश्रद्धा भी होना घातक होता है। वह झूठ उस सत्य से कहीं अधिक मूल्यवान तथा नैतिकता का पोषक है जिसके द्वारा किसी सहृदय व्यक्ति के कष्टों का निवारण होता है। निधि देउस्कर की कहानी 'बस तीस दिन' एक कर्तव्यपरायण पुलिस अधिकारी के दुर्भाग्य की कथा है। कहानी की भाषा सीधी, सरल होने के बावजूद समर्थ कथा लेखिका ने सुप्रसिद्ध कवि श्री भवानी प्रसाद मिश्र की इन पंक्तियों को चरितार्थ कर दिया है-जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख / इसके बावजूद औरों से बड़ा तू दिख।

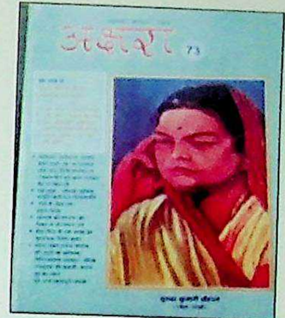
'अक्षरा' को स्तरीय बनाए रखने में सक्षम संपादक बंधुओं का एक बार पुनः आभार।

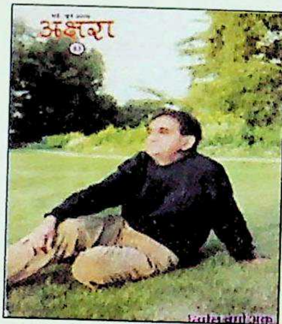
- रवि किरण सचदेव, गुरुग्राम (हरियाणा)

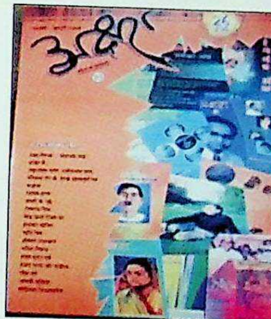
अक्षरा के विशेषांक

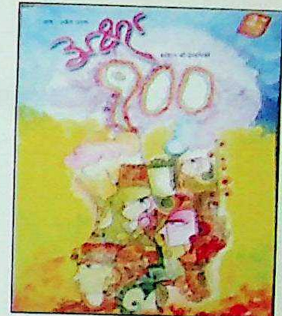


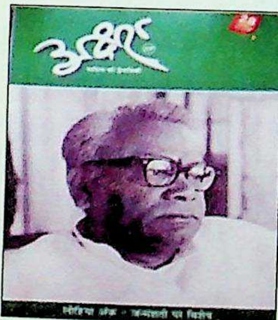




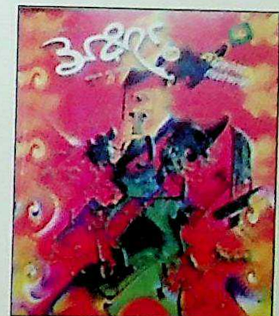


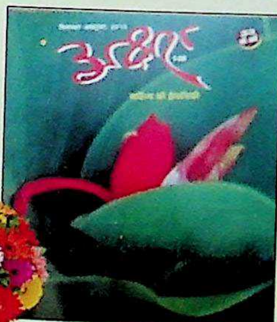


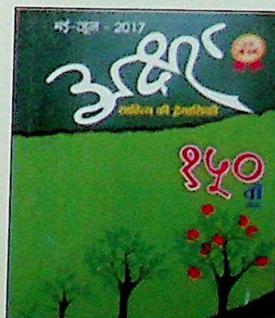


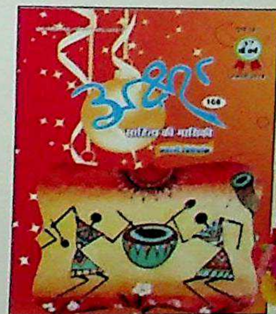












अक्षरा के विशेषांक बिक्री के लिए उपलब्ध हैं।

प्रेषक, प्रकाशक, मुद्रक कैलाशचन्द्र पंत, भोपाल द्वारा, स्वत्वाधिकारी मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल से प्रकाशित एवं श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल से मुद्रित।